बुद्धा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वती ।७६।
पत्युः कुलस्य च भयाद्व्यभिचारं करोति न ।
पतिव्रताऽधमा सा हि कथिता पूर्वसूरिभिः ।७७।

हे गिरिजे ! मैंने अब तक पतिव्रत धर्म का स्वरूप एवं परम महत्व का वर्णन किया, अब पतिव्रता के भेदों का वर्णन करती हूँ । उसे तुम दत्त चित्त होकर प्रेम से सुनो ।७१। पतिव्रतायें भी उत्तम मध्यम आदि के भेद से जगत् में चार तरह की होती हैं जिनका स्मरण मात्र ही पापों का क्षय करने वाला है ।७२। ये चार भेद उत्तम, मध्यम, अधम और अति निकृष्ट होते हैं । इनके स्वरूप, लक्षण तुम सावधानी से सुनो ।७३। जिसका मन स्वप्न में भी अपने पति को ही देखा करता हैं और किसी भी दशा में पर पुरुष की ओर नहीं आता, वह उत्तम पतिव्रता है । ७४ । हे पार्वती ! नारी दूसरी स्त्रियों के पतियों को अवस्थानुसार पिता, भ्राता और पुत्र के तुल्य देखती हैं वह मध्यम श्रेणी की है ।७५। जो नारी हृदय में अपना धर्म समझकर व्यभिचार को बहुत बुरा कार्य मानते हुए उससे पूर्णतया बचती हैं वह अच्छे चरित्र वाली अधम कोटि की पतिव्रता हैं ।७६। जो मनमें इच्छा रखते हुए भी अवसर न पाकर तथा पति और कुल के भय से एवं लोकापवाद के कारण व्यभिचार से बची रहती हैं उसको भी पण्डित समुदाय ने अति निकृष्ट श्रेणी की पतिव्रता माना है ।७७।

चतुर्विधा अपि शिवे पापहन्त्र्यः पतिवृताः ।
पावनाः सर्वलोकानामिहामुत्रापि हर्षिताः ।७८।
पतिव्रत्यप्रभावेणात्रिस्त्रिया त्रिसुरार्थदात् ।
जीवितो विप्र एको हि मृतो वःराहशापतः ।७९।
एवं ज्ञात्वा शिवे नित्यं कर्तव्यम्पतिसेवनम् ।
त्वया शैलात्मजे प्रीत्या सर्वकामप्रदं सदा ।८०।
जगदम्बा महेशी त्वं शिवः साक्षात्पतिस्तव ।
तव स्मरणतो नार्यो भवन्ति हि पतिव्रताः ।८१।
त्वदग्रे कथनेनानेन किं देवि प्रयोजनम् ।

तथापि कथितं मेऽद्य जगदाचारतः शिवे ।८२।
इत्युक्त्वा विररामासौ द्विजस्त्री सुप्रणभ्य ताम् ।
शिवाम्मुदमति प्राप पार्वती शङ्करप्रिया ।८३।

हे गिरिनन्दिनी ! ये चारों तरह की पतिव्रताऐं पापों को नाश करने वाली और दोनों लोकों को पवित्र बनाने वाली कही जाती हैं ।७८। पति व्रत धर्म के प्रबल प्रभाव से ही अत्रि ऋषि की स्त्री ने तीनों देवों की प्रार्थना पर बाराह के शाप से मृत एक ब्राह्मण को जीवित कर दिया ।३९। हे शैलपुत्री ! पतिव्रता धर्म के महत्व को समझकर तुम को पति की प्रेम-भक्ति के भाव से सेवा करनी चाहिए । इससे तुम्हारी समस्त मन कामनाऐं निश्चय पूरी हो जाँयगी ।८०। तुम जगदम्बा महेश्वरी साक्षात् भगवान् शंकर तुम्हारे पति हैं तुम्हारे पवित्र नाम का स्मरण करके ही जगत् में पतिव्रताऐं होंगी और सौभाग्य सुख का उपभोग करेंगी ।८१। हे देवी ! हे कल्याणि ! यद्यपि समस्त जगत् की स्वामिनी आपके सामने ऐसे उपदेशों के कथन की आवश्यकता नहीं है, तो भी लोकाचार से ही मैंने यह सब कुछ तुम से कहा है ।८२। ब्रह्माजी ने कहा- वह ब्राह्मणी इतना कहकर प्रणाम कहती हुई मौन हो गई और शिव-प्रिया पार्वती भी परमानन्द में मग्न हो गई ।८३।

——

रुद्र संहिता—कुमार खण्ड

॥ कुमार द्वारा तारक वध और देवोत्सव ॥

निर्वाय वीरभद्र तं कुमारः पर वीरहाः ।
समैच्छत्तारकवधं स्मृत्वा शिवपदाम्बुजौ ।१।
जगर्जाथ महातेजाः कार्तिकेयो महाबलः ।
सन्नद्धः सोऽभवत्क्रुद्धः सैन्येन महता वृतः ।२।
तदा जयजयेत्युक्त सर्वैर्देवगणैस्तथा ।
संस्तुतो वाग्भिरिष्टाभिस्तदैव च सुरर्षिभिः ।३।

तारकस्य कुमारस्य संग्रामोऽतीव दुःसहः ।
जातस्तदा महाघोरः सर्वभूभयकरः ।४।
शक्तिहस्तौ च तौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ।
सर्वेषां पश्यतां तत्र महाश्चर्यवतां मुने ।५।
शक्तिनिर्भिन्न देहौ तौ महासाधनसंयुतौ ।
परस्परं वंचयंतौ सिंहाविव महाबलौ ।६।
वैतालिकं समाश्रित्य तथा खेचरकं मतम् ।
प्राप तं च समाश्रित्य शक्त्वा शक्ति विजघ्नतु ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—कुमार कार्त्तिकेय वे वीर शत्रु का नाश करने वाले वीरभद्र का निवारण कर भगवान् शिव के चरण-कमल का स्मरण किया और मनमें तारकासुर का वध कर देने की इच्छा की ।१। इसके अनन्तर महाबलवान और परम तेजस्वी कुमार कार्त्तिकेय को बड़ा भारी क्रोधावेश हो गया और बड़ी भारी सेना साथ में लेकर युद्ध करने को चल दिये ।२। उस समय समस्त देवगण अपने गणों सहित जय-जयकार करने लगे और ऋषि-मुनि श्रेष्ठ वाणी द्वारा स्तुति का गान करने में तत्पर हो गए ।३। उस समय तारकासुर और कुमार कार्त्तिकेय का अत्यन्त ही भयंकर महाघोर युद्ध होने लगा जोकि समस्त प्राणियों को भय उत्पन्न करने वाला था ।४। हे मुने ! संग्राम भूमि में वे दोनों वीर हाथों में शक्ति लेकर परस्पर ऐसा भीषण युद्ध करने लगे कि समस्त देवता लोग परमाश्चर्य से चकित हो गए ।५। उस महान् संग्राम में दोनों ही वीरों का शरीर शक्ति के प्रहारों से छिन्न भिन्न हो गया था किन्तु वे दोनों निरन्तर एक दूसरे पर प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ।६। दोनों बली वीर वैतालिक एवं खेचर मत वाले युद्ध-शास्त्र का आश्रय ग्रहण कर तथा प्राप्य का समाश्रय लेकर परस्पर युद्ध में परायण हो रहे थे ।७।

एभिर्मंत्रैर्महावीरौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम् ।
अन्योन्यं साधकौ भूत्वा महाबलपराक्रमौ ।८।

महाबलं प्रकुर्वतौ परस्परवधैषिणौ ।
जघ्नतुः शक्तिधाराभी रणे रणविशारदौ ।९।
मूर्ध्नि कंठे तथा चोर्वोर्जान्वोश्चैव कटीतटे ।
वक्षस्युरसि पृष्ठे च चिच्छिदुश्च परस्परम् ।१०।
तदा तौ युध्यमानौ च हन्तुकामौ महाबलौ ।
बल्गंतौ वीरशब्दैश्च नानायुद्धविशारदौ ।११।
अभवन्प्रेक्षकाः सर्वे देवा गंधर्वकिन्नराः ।
ऊचुः परस्परं तत्र कोऽस्मिन्युद्धे विजेष्यते ।१२।
तदा नभोगता वाणी जगौ देवांश्च सांत्वयन् ।
असुरं तारकं चात्र कुमारोऽयं हनिष्यति ।१३।
मा शोच्यतां सुरैः सर्वैः सुखेन स्थीयतामितिः ।
युष्मदर्थं शंकरो हि पुत्ररूपेण संस्थित ।१४।

मन्त्रों के द्वारा दोनों का संग्राम चल रहा था और महाबल पराक्रम वाले दोनों एक दूसरे के बाधक होकर अद्भुत युद्ध कर रहे थे ।८। उस समय परस्पर में दोनों ही एक दूसरे के वध की इच्छा से बड़ा बल एवं पराक्रम दिखा रहे थे और युद्ध में विशारद शक्ति द्वारा पारस्परिक प्रहारों को बौछार करने लगे ।९। दोनों वीर ही एक दूसरे के शिर, कण्ठ, उरु, जानु, कटि, वक्षस्थल और पृष्ठ-भाग में सर्वत्र प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ।१०। दोनों के हृदय में एक दूसरे के वध की प्रबल इच्छा थी और उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कौशल से संग्राम कर रहे थे और महावीर तर्जना पूर्ण ध्वनि द्वारा भर्त्सना भी करते जाते थे ।११। समस्त देव समुदाय और गन्धर्व आदि एकत्रित होकर इस अभूतपूर्ण भीषण संग्राम को देखते हुए आपस में किस की जय होगी, ऐसी चर्चा करते थे ।१२। सभी देवों के सन्देह से निवारणार्थ आकाशवाणी हुई कि कुमार कार्तिकेय द्वारा ही तारक दैत्य का निश्चय वध होगा ।१३। आकाशवाणी में देवगण से कहा गया कि हे देवताओ ! आप चिन्ता मत करो और सुखपूर्वक

रहो, तुम्हारे कल्याण के लिए भगवान् शिव ही यहाँ पुत्र रूप में उपस्थित होकर युद्ध कर रहे हैं ।१४।

श्रुत्वा तदा तां गगने समीरितां वाचं शुभां स प्रमथै समावृतः
निहंतुकामः सुखितः कुमारको दैत्याधिपं तारकमाश्वभूत्तदा।
शक्त्या तया महाबाहुराजघान स्तनांतरे ।
कुमारः स्म रुषाऽऽविष्टस्तारकासुरमोजसा ।१६।
तं प्रहारमनादृत्य तारको दैत्यपुंगव ।
कुमारं चापि संक्रुद्धः स्वशक्त्या संजघान सः ।१७।
तेन शक्तिप्रहारेण शंकरिर्मूच्छितोऽभवत् ।
मुहूर्ताच्चेतनां प्राप स्तूयमानो महर्षिभिः ।१८।
यथा सिंहो मदोन्मत्तो हंतुकामस्तथासुरम् ।
कुमारस्तारकं शक्त्या स जघान प्रतापवान् ।१६।
एवं परस्परं तौ हि कुमारश्चापि तारकः ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ शक्तियुद्ध विशारदौ ।२०।
अभ्यामपरमावास्तातन्योन्यं विजिगीषया ।
पदातिनौ युध्यमानौ चित्ररूपौ तरस्विनौ ।२१।

आकाशवाणी के सुन्दर वचनों को श्रवणकर गणों के सहित कुमार को बहुत प्रसन्नता हुई और सुखपूर्वक तारक के वध का निश्चय किया ।१५। उस समय महाबाहु कुमार ने तारक की छाती में बड़े ही क्रोध और पराक्रम के साथ शक्ति का प्रबल प्रहार किया किन्तु महासुर ने उस प्रहार को तिरस्कृत करते हुए कुमार पर अपनी शक्ति का प्रहार कर दिया ।१६-१७। उस भीषण प्रहार में कुमार मूर्छित हो गए थे। तब महर्षियों ने स्तवन किया और वे क्षण-भर के पश्चात् ही उठकर सम्हल गये ।१८। मदोन्मत्त सिंह के समान बड़ी गर्जना के साथ एकदम टूटकर प्रतापी कुमार कार्त्तिकेय ने तारक पर अपना प्रहार किया । १९ । शक्ति संग्राम में परम कुशल कुमार और तारक दोनों का महाघोर संग्राम चला। युद्ध के अभ्यास में चतुर दोनों ही पारस्परिक जय की इच्छा से पैदल युद्ध में विचित्र वेगयुक्त थे ।२०-२१।

विविधैर्घातपुंजैस्तावन्योन्यं विनिजघ्नतुः ।
नानामार्गान्प्रकुर्वन्तो गर्जन्तौ सुपराक्रमौ ।२२।
शवलोकपराः सर्वे देवगंधर्वकिन्नराः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्नोचुः किंचन तत्र ते ।२३।
न ववौ पवमानश्च निष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ।
चचाल वसुधा सर्वा सशैलवनकानना ।२४।
एतस्मिन्नंतरे तत्र हिमालयमुखा धराः ।
स्नेहार्दितास्तदा जग्मुः कुमारं च परीप्सवः ।२५।
ततः स दृष्ट्वा तान्सर्वान्भयभीतांश्च शांकरिः ।
पर्वतान्गिरिजापुत्रो बभाषे परिबोधयन् ।२६।
मा खिद्यतां महाभागा मा चिंता कुर्वतां नगाः ।
घातयाम्यद्य पापिष्टं सर्वेषां वः प्रपश्यताम् ।२७।
एवं समाश्वास्त तदा पर्वतान् निर्जरान् गणान् ।
प्रणम्य गिरिजां शंभुमाददे शक्तिमुत्प्रभाम् ।२८।

अनेक प्रकार के बल का प्रयोग करते हुए दोनों वीर आपस में प्रहारों की बौछार कर रहे थे और विविध मार्गो से चलते हुए पराक्रम-पूर्वक गर्जने लगे ।२२। देव गन्धर्वादि सब उस युद्ध को देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुए और कुछ भी न कह सके ।२३। उस समय संग्राम की भीषणता के कारण वायु का चलना बन्द हो गया, भास्कर कान्तिहीन हो गये और समस्त वन–कानन के सहित पर्वत एवं पृथिवी चलायमान हो गई ।२४। उस समय गिरिराज हिमवान् अन्य शैल समुदाय के साथ स्नेह से आकुल होकर कुमार के समीप गये ।२५। शिव पुत्र कुमार ने इन सबको देखकर समझाते हुई कहा—हे महाभागो ! आप लोग मनमें कुछ भी खेद तथा चिन्ता मत करिये । मैं अभी कुछ क्षण में इस महापापी दैत्य का वध कर दूँगा ।२६-२७। तब कुमार ने शैलराज, देवगण, जग-म्बा और भगवान् शंकर को प्रणाम करके एक परम प्रभावशाली शक्ति का ग्रहण किया ।२८।

तं तारकं हतुमनाः करशक्तिर्महाप्रभुः ।

विरराज महावीरः कुमारः शंभुबालकः ।२९।
शक्त्या तया जघानाथ कुमारस्तारकासुरम् ।
तेजसाऽऽढ्यः शंकरस्य लोकक्लेशकरं च तम् ।३०।
पपात सद्यः सहसा विशीर्णांगोऽसुरः क्षितौ ।
तारकाख्यो महावीरः सर्वासुभगणाधिपः ।३१।
कुमारेश हतः सोतिवीरः स खलुः तारकः ।
लयं ययौ च तत्रैव सर्वेषां पश्यतां मुने ।३२।
तथा तं पतितं दृष्ट्वा तावकं बलवत्तरम् ।
न जघान पुनर्वीरः स गत्वा व्यसुमाहवे ।३३।
हते तस्मिन्महादैत्ये तारकाख्ये महाबले ।
क्षयं प्रणीता बहवोऽसुरा देवगणैस्तदा ।३४।
केचिदभीताः प्रांजलयो बभूवुस्तत्र चाहवे ।
छिन्नभिन्नांगकाः केचिन्मृता दत्याः सहस्रशः ।३५।

शिव पुत्र महाबली महाप्रभु ने तारक के बध की इच्छा से शक्ति को हाथ में उठाया और एक अद्भुत शोभा हुई ।२९। फिर कुमार ने लोक को क्लेश देने वाले तारक पर बहुत ही तेजी से भरा हुआ प्रहार किया ।३०। उस प्रहार से तारक जो महा बलवान और असुरों का अधिपति था, सर्वाङ्ग विशीर्ण होकर तुरन्त पृथ्वी पर गिर गया और मृत्यु शैया की गोद में सो गया ।३१। हे मुने ! वीर कार्त्तिकेय ने इस प्रकार तारकासुर को मारकर गिरा दिया तो वह सबके देखते ही नाशवान हो गया ।३२। जब कुमार ने समझ लिया कि तारक वह मर गया है तो फिर उस पर कुमार ने वीर नियम के कारण कोई भी प्रहार नहीं किया ।३३। महाबली तारक जो कि दैत्य-वर्ग का नायक था, मर गया तो फिर देवगण ने अनेक असुरों का संहार यों ही बात की बात में कर डाला ।३४। असुरों में बहुत से भयभीत होकर युद्ध स्थल में दीनता प्रदर्शित करने लगे, कुछ छिन्न-भिन्न अङ्ग वाले होकर भाग गये और सहस्रों काल कवलित हो गये ।३५।

केचिज्ज्ञाताः कुमारस्य शरणं शरणार्थिनः ।

वन्दतः पाहि पाहीति: दैत्याः सांजलयस्तदा ।३६।
कियंतश्च हतास्तत्र कियंतश्च पलायिताः ।
पलावमाना व्यथितताडिता निर्ज्जरैर्गणैः ।३७।
सहस्रशः प्रविष्टास्ते पाताले च जिजीषवः ।
पलायमानास्ते सर्वे भग्नाशा दैन्यमागतः ।३८।
एवं सर्वं दैत्यसैन्यं भ्रष्टं जातं मुनीश्वर ।
न केचित्तत्र संतस्थुर्गणदेवभयात्तदा ।३९।
आसीन्निष्कंटकं सर्वं हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
ते देवाः सुखमापन्नाः सर्वे शक्रादयस्तदा ।४०।
एवं विजयमापन्नं कुमारं निखलाः सुराः ।
बभूवुर्गगद्धष्टास्त्रिलोकाश्च महासुखाः ।४१।

कुछ अत्यन्य घबड़ाकर करबद्ध होते हुए कुमार की शरण में जाकर 'रक्षा करो'—ऐसी प्रार्थना करने लगे ।३६। उस संग्राम में कुछ मारे गये, बहुत से भाग खड़े हुए और कुछ पलायन परायण होते हुए भी देवों द्वारा प्रताड़ित एवं व्यथित किये गये ।३७। युद्ध भूमि से भागने वाले असुरों की परिपूर्ण आशाऐं निष्फल हो गईं और वे अपने प्राणों के त्राण के लिए भागकर पाताल लोक में चले गये ।३८। हे मुनिसत्तम ! उस समय इस प्रकार से दैत्य सेनाऐं नष्ट-भ्रष्ट हो गईं कि वहाँ भीति विवश होकर कोई भी सामने नहीं ठहर सका ।३९। दुरात्मा तारकासुर के मर जाने पर सब निष्कण्टक हो गये और इन्द्र आदि समस्त देवता परम प्रसन्न हो गये ।४०। उस समय देवताओं ने उस आशातीत बिजय को देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त की और फिर त्रिभुवन में महान् आनन्दोल्लास छा गया ।४१।

तदा शिवोऽपितं ज्ञात्वा विजयं कार्तिकस्य च ।
तत्राजगाम स मुदा सगणः प्रियया सहः ।४२।
स्वात्मजं स्वांकमारोप्य कुमारं सूर्यवर्चसम् ।
लालयामास सुप्रीत्या शिवा च स्नेहसंकुला ।४३।
हिमालयस्तदागत्यः स्वपुत्रैः परिवारितः ।

सबंधुः सानुगः शंभु तुष्टाव च शिवां गुहम् ।४४।
ततो देवगणाः सर्वे मुनयः सिद्धचारणाः ।
तुष्टवुः शार्करिं शंभु गिरिजां तुषिता भृशम् ।४५।
पुष्पवृष्टिं सुमहतीं चक्रुश्चोपसुरास्तदा ।
जगुर्गंधर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।४६।
वादित्राणि तथा नेदुस्तदानीं च विशेषतः ।
जयशब्दो नमःशब्दो बभूवोच्चैर्मुहुर्मुहुः ।४७।
ततो मयाऽच्युतश्चापि संतुष्टोऽभद्विशेषत. ।
शिवं शिवां कुमारं च संतुष्टाव समादरात् ।४८।
कुमारमग्रतः कृत्वा हरिकेन्द्रमुखाः सुराः ।
चक्रुर्नीराजनं प्रीत्या मुनयश्चापरे तथा ।४९।

जब भगवान् महेश्वर ने विजय का सम्वाद सुना तो स्वयं समस्त गण और प्रिया भवानी के साथ कुमार के समीप गये ।४२। भास्कर के तुल्य दिव्य कान्ति से कमनीय कुमार कीर्त्तिकेय को पार्वती माँ ने अपनी गोद में बिठा लिया और स्नेह से गद्गद् होकर लाड़ करने लगी ।४३। उसी अवसर पर हिमवान् भी अपने समस्त परिवार के साथ वहाँ आ गये और पूज्य शंकर और अपनी पुत्री पार्वती और कुमार की प्रशंसा करके उन्हें हर्षित करने लगे ।४४। समस्त देवगण, मुनि, ऋषि, विद्याधर गन्धर्व और सिद्ध, चारण आदि ने भी प्रसन्न चित्त होकर शिव, शिवा और शिव कुमार की स्तुति की ।४५। उपदेव अन्तरिक्ष से पुष्प वृष्टि करने लगे, गन्धर्वगण गुणगान कर रहे थे और अप्सराऐं नृत्य करने में तत्पर हो रही थीं ।४६। चारों ओर विशेष वाद्यों का वादन होने लगा 'जय-जयकार' और 'नमो नमः' की तुमुल ध्वनि से आकाश गूंज उठा ।४७। उस समय हे मुने ! मैं और भगवान् अच्युत भी वहां पर गये और शिव-भवानी और कार्त्तिकेय कुमार की हम दोनों ने बहुत प्रशंसा की ।४८। इसके अनन्नर ब्रह्मा, विष्णु, और महेन्द्र आदि समस्त देवों ने मुनिगण के साथ कुमार को आगे बिठाकर उनकी आरती की । ।४९।

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा ।
तदोत्सवो महानासीत्कीर्तन च विशेषतः ।५०।
गीतवाद्यैः सुप्रसन्नैस्तथा साजलिभिर्मुने ।
स्तूयमानो जगन्नाथः सर्वैर्देवगणैरभूत् ।५१।
ततः स भगवान्रुद्रो भवान्या जगदंबया ।
सर्वैः स्तुतो जगामाथ स्वर्गिरिं स्वगणैर्वृतः ।५३।

वेदध्वनि,गायन वादन और यज्ञ कीर्तन आदि से द्वारा वह विजय का एक महान उत्सव मनाया गया ।५०। हे मुनिश्वर ! उस समय गान-वादन के साथ बद्धाञ्चलि देवों के द्वारा सस्तुत भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए । इसके पश्चात् उस समय देवों से स्तुत होकर भगवान् रुद्र, भवानी और अपने गणों के साथ कैलास पर चले गये ।५१-५२।

बाण और प्रलम्ब का वध

एतस्मिन्नंतरे तत्र क्रौञ्चनामाचलो मुने ।
आजगाम कुमारस्य शरणं बाडपीडितः ।१।
पलायमानो यो युद्धादसोढा तेज ऐश्वरम् ।
तुतोदातीव स क्रौञ्चं कोट्यातुबलान्वितः ।२।
प्रणिपत्य कुमारस्य स भक्त्या चरणाम्बुजम् ।
प्रेमनिर्भरया वाचा तुष्टाव गुहमादरात् ।३।
कुमार स्कन्द देवेश तारकासुरनाशक ;
पाहि मां शरणापन्नं बाणासुरनिपीडतम् ।४।
संगरात्ते महासेन समुच्छिन्नः पत्तायितः ।
न्यपीडयच्च माऽऽगत्य हा नाथ करुणाकर ।५।
तत्पीडितस्ते शरणमागतोऽहं सुदुःखितः ।
पयायमानो देवेश शरजन्मन्दयां कुरु ।६।
दैत्यं तं नाशय विभो बाणह्वं मां सुखीकुरु ।
दैत्यध्नस्त्वं विशेषेण देवावनकरः स्वराट् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उसी समय पर बाणासुर से उत्पीड़ित

होकर क्रौञ्च नाम वाला पर्वत कुमार की शरण में उपस्थित हुआ ।१। बाणासुर कुमार का असह्य तेज न सहकर पहिले संग्राम छोड़कर भाग गया था । उस दैत्य में दश सहस्र कोटि का महान् बल था और वह क्रौच को पीड़ा पहुँचा रहा था ।२। तब कुमार के दोनों चरणों में पड़कर बहुत ही आदर के साथ प्रेम से भरी हुई वाणी से क्रौञ्च ने प्रार्थना की ।३। क्रौञ्च ने कहा—हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे देवेश ! हे तारक के नाशक ! मैं बाणासुर से इस समय बहुत ही पीड़ित हो रहा हूँ । आपकी शरण में आया हूँ । आप मुझ दयनीय हीन की रक्षा करो ।४। हे महासेन ! हे नाथ ! वह आपके समक्ष घबड़ा कर युद्ध भूमि से भाग गया हैं और वहाँ जाकर मुझे सता रहा है ।५। मैं उसी दुष्ट दैत्य बाण से उत्पीड़ित होकर आपके चरणों की शरण में आया हूँ । हे देवेश ! उस भगोड़े से मेरे प्राणों की रक्षा कीजिये ।६। हे विभो ! आप तो दुष्ट दैत्यों का संहार करने वाले हैं और अपने ही अतुल तेज से प्रकाशित होकर देवों की सर्वदा रक्षा करने वाले हैं । अब उस दुरात्मा का वध कर मुझे सुख प्रदान करने की कृपा कीजिये ।७।

इति क्रौञ्चस्तुतः स्कन्दः प्रसन्नो भक्तपालकः ।
गृहीत्वा शक्तिमतुलां स्वां सस्मार शिवं धिया ।८।
चिक्षेप तां समुद्दिश्य स बाणं शंकरात्मजः ।
महाशब्दो बभूवाथ जज्वलुश्च दिशो नभः ।९।
सबलं भस्मसात्कृत्वाऽसुरं तं क्षणमात्रतः ।
गुहोपकठं शक्तिः सा जगाम परमा मुने ।१०।
ततः कुमारः प्रोवाचक्रौञ्चं गिरिवरं प्रभुः ।
निर्भयः स्वगृहं गच्छ नष्टः स सबलोऽसुरः ।११।
तच्छ्रुत्वा स्वामिवचनं मुदितो गिरिराट् तदा ।
स्तुत्वा गुहं तदाराति स्वधाम प्रत्यपद्यत ।१२।
ततः स्कन्दो महेशस्य मुदास्थापितवान्मुने ।
त्रीणि लिगानि तत्रैव पापाघ्नानि विधानतः ।१३।
प्रतिज्ञेश्वरनामादौ कपालेश्वरमादरात् ।

कुमारेश्वरमेवाथ सर्वसिद्धिप्रदं त्रयम् ।१४।

ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह दीनतापूर्ण क्रौञ्च की स्तुति को सुन कर भक्त वत्सल कुमार बहुत प्रसन्न हो गये तथा शिव का स्मरण कर उन्होंने अपने हाथों में शक्ति धारण करली ।८। बाण को लक्ष्य बनाकर उसे मारने के उद्देश्य से उस शक्ति को छोड़ दिया । कुमार के उस शक्ति के प्रयोग से उस समय एक महान् ध्वनि हुई और सब दिशाएँ तेज से प्रज्ज्वलित हो उठी ।९। क्षणमात्र में कुमार की वह शक्ति बाणासुर को उसके अनुगामियों के साथ भस्मीभूत करके तुरन्त कुमार के पास वापिस आगई ।१०। इसके अनन्तर कुमार ने क्रौञ्च से कहा—अब तुम भय रहित होकर अपने स्थान को चले जाओ । तुमको सताने वाला बाण मारा गया है और उसके अनुगामी भी सब विध्वस्त हो गये है । ११ । स्वामी कार्त्तिकेय के ऐसे सन्तोषप्रद वचन सुनकर क्रौञ्च को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और फिर उसने कुमार का स्तवन किया तथा वह अपने निवास स्थान को चला गया ।१२। इसके पश्चात् परम प्रसन्न होकर कुमार ने समस्त पापों के समूह का क्षय करने वाले शिव के तीन लिंगों की स्थापना की ।१३। इन तीनों के नाम प्रतिज्ञेश्वर, कपालेश्वर और कुमारेश्वर हुए । वे तीनों ही समस्त सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं ।१४।

पुनः सर्वेश्वरस्तत्र जयस्तंभसमीपतः ।
स्तम्भेश्वराभिघं लिंगं गुहं स्थापितवान्मुदा ।१५।
ततः सर्वे सुरास्तत्र विष्णुप्रभृतयो मुदा ।
लिंगं स्थापितवंतस्ते देवदेवस्य शूलिनः ।१६।
सर्वेषां शिवलिगानां महिमाऽभूत्तदाऽद्भुतः ।
सर्वकामप्रदश्चापि मुक्तिदो भक्तिकारिणाम् ।१७।
ततः सर्वसुरा विष्णुप्रमुखाः प्रीतमानसाः ।
ऐच्छन्गिरिवरं गंतुं पुरस्कृत्य गुरुं मुदा ।१८।
तस्मिन्नवसरे शेषपुत्रः कुमुदनामकः ।
आजगाम कुमारस्य शरणं दैत्यपीडितः ।१९।
प्रलंबाख्योऽसुरो यो हि रथादस्मात्पलायितः ।

स तत्रोपद्रवं चक्रे प्रबलस्तारकानुगः ।२०।
सोऽथ शेषस्य तनयः कुमुदोऽहिपतेर्महान् ।
कुमारशरणां प्राप्तस्तुष्टाव गिरिजात्मजम् । १।

अपने जय-स्तम्भ के समीप में सर्वेश्वर लिंग को स्थापित किया और उसके समीप में ही एक अन्य लिंग संस्थापित किया जिसका नाम स्तम्भेश्वर है ।१५। इसके पश्चात् विष्णु आदि समस्त देवों ने देवाधिदेव शङ्कर का लिङ्ग वहाँ स्थापित किया ।१६। उस जगह पर इन सभी सुसंस्थापित शङ्कर के लिंगों की अद्भुत महिमा हुई । ये सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा भक्ति-भाव रखने वालों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं ।१७। उस समय विष्णु आदि सब देवताओं ने सप्रेम पुत्र को आगे करके कैलाश गमन करने की इच्छा की ।१८। उसी समय वहाँ शेषजी का पुत्र कुसुद नाम वाला वहाँ आया और दैत्य से पीड़ित होकर कुमार की शरण ग्रहण की ।१९। प्रलम्बासुर नामक दुष्ट दैत्य कुमार के सामने से युद्ध में भागकर वहाँ पहुँच गया था और तारक के अनुगामी उसने पाताल में उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया था ।२०। महान् मतिमान शेष के आत्मज कुमुद ने गिरिजानन्दन की शरण में आकर स्तुति करना आरम्भ कर दिया ।२१।

देवदेव महादेववरतात महाप्रभो ।
पीडितोऽहं प्रलबेन त्वाऽह शरणागतः ।२२।
पाहि मां शरणापन्नं प्रलबलासुरपीडितम् ।
कुमार स्कन्द देवेश तारकारे महाप्रभो ।२३।
त्वं दीनबन्धुः करुणासिन्धुरानतवत्सलः ।
खलनिग्रहकर्ता हि शरण्यश्च सतां गतिः ।२४।
कुमुदेन स्तुतश्चेत्थं विज्ञप्तस्तद्वधाय हि ।
स्वाञ्च शक्ति स जग्राह स्मृत्वा शिवपदांबुजौ ।२५।
चिक्षेप तां समुद्दिश्य प्रलंबं चिरिजासुतः ।
महाशब्दो वभवाय जज्वलुश्च दिशो नभः ।२६।
तं संयुतबलं शक्तिद्रुतं कृत्वा च भस्मसात् ।

गुहोपकंठ सहसा जगामाक्लिष्टकारिणी ।२७।
ततः कुमार प्रोवाच कुमुदं नागबालकम् ।
निर्भयः स्वगृह गच्छ नष्टः सबलोऽसुरः ।२८।

कुमुद ने प्रार्थना की—हे देवाधिदेव महादेव के आत्मज ! हे महा प्रभो ! मैं इस समय दुष्ट प्रलम्ब की पीड़ा से बताया हुआ आपके चरणों की शरण में प्राप्त हुआ हूं ।२२। हे कुमार ! हे स्कन्द ! हे तारक संहारक ! कृपा कर प्रलम्ब दैत्य से पीड़ित मुझ दीन की रक्षा कीजिये ।२३। आप दीनों के बन्धु, दया के समुद्र. दुष्टों के निग्रह करने वाले, भक्तों के वत्सल, शरणागत के प्रतिपालक और सत् पुरुषों के उद्धारक है ।२४। जब कुमुद ने ऐसी दीनता के साथ दैत्य का वध करने की प्रार्थना की तो महाप्रभु ने अपने पिता भगवान् शङ्कर के चरणों का स्मरण किया और तुरन्त अपनी शक्ति उठा ली ।२५। तब गिरिजानन्दन ने प्रलम्ब बल के उद्देश्य से शक्ति को छोड़ दिया । छूटते ही महान् घोर ध्वनि के साथ ही आकाश और दशों दिशाऐं प्रज्ज्वलित हो गये ।२६। दश हजार के बल वाले उस दैत्य को अनुचरों सहित वह शक्ति भस्म करके कुमार के पास आगई ऐसा उस शक्ति का अद्भुत कर्म सम्पन्न हुआ ।२७। उस समय कुमार ने कुमुद को आज्ञा दी कि तुमको सताने वाला दुष्ट दैत्य सपरिवार ध्वस्त हो गया है । अब तुम निडर होकर अपने घर लौट जाओ ।२८।

तच्छ्रुत्वा गुहवाक्यं स कुमुरोऽहिपतेः सुतः ।
स्तुत्वा कुमारं नत्वा च पातालं मुदितो ययौ ।२९।
एवं कुमारविजयं वर्णितं मे मुनीश्वर ।
चरित तारकवधं परमाश्चर्मकारकम् ।३०।
सर्वपापहरं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ।३१।
ये कीर्तयति सुयशोऽमितभाग्ययुता नराः ।
कुमारचरितं दिव्यं शिवलोकं प्रयांति ते ।३२।
श्रोष्यंति ये च तत्कीर्ति भक्त्या श्रद्धान्विता जनाः ।
मुक्ति प्राप्स्यंति ते दिव्यामिह भुक्त्वा परं सुखम् ।३३।

कुमुद ने ऐसे कुमार के परमानन्दं प्रदान करने वाले वचन सुनकर उनकी वहुत कुछ स्तुति की और सादर प्रणाम कर अपने निवास स्थान को चला गया ।२६। हे मुनिवर ! इस तरह मैंने आपको कुमार कात्तिकेय के इस परम अद्भुत युद्धों में विजय प्राप्त करने का सम्वाद सुनाया है । इसमें तारकासुर के वध का चरित्र तो अत्यन्त ही विस्मय उत्पन्न करने वाला है ।३०। यह तारका वध की कथा पापों का क्षय करने वाला है और संसार में मनुष्यो को समस्त कामनायें पूरी कर यश आयु के साथ मुक्ति एवं मुक्ति के भी प्रदान करने वाली है ।३१। जगत में मनुष्यों को इस चरित्र के कथन एवं श्रवण करने पर परम सुख-सौभाग्य का लाभ होगा और कुमार के इस अति उत्तम चरित्र के कीर्तन तथा सुनने से अन्त में शिव के लोक की प्राप्ति निश्चय ही होगी ।३२। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति की भावना से इस दिव्य कुमार की कीर्ति का श्रवण करेंगे उन्हें यहां सर्व सुखी के उपयोग और अन्त में दिव्य मोक्ष का लाभ होगा ।३३।

गणेश की प्रथम पूज्यपद दिया जाना और विवाह

साधु पृष्टं मुनिश्रेष्ठ भवता करुणात्मना ।
श्रूयतां दत्तकर्ण हि वक्ष्येऽहमृषिसत्तम् ।१।
शिवा शिवश्च विप्रेन्द्र द्वयोश्च सुतयोः परम् ।
दर्शं दर्शं च तल्लीलां महत्प्रेम समावहत् ।२।
पित्रोर्लालयतोस्तत्र सुखं चाति व्यवर्द्धत ।
सदा प्रीत्या मुदा चातिलेलनं चक्रतुः सुतौ ।३।
तावेव तनयौ तत्र मातापित्रोर्मुनीश्वर ।
महाभक्त्या यदा युक्तौ परिचर्या प्रचक्रतुः ।४।
षण्मुखे च गणेशे च पित्रोस्तदधिकं सदा ।
स्नेहो व्यवर्द्धत महांशुक्लपक्षे यथा शशी ।५।
कदाचितौ स्थितौ तत्र रहसि प्रेमसंयुतौ ।
शिवा शिवश्च देवर्षे सुविचारपरायणौ ।६।

विवाहयोग्यौ संजातौ सुताविति च तावुभौ ।
विवाहश्च कथं कार्यः पुत्रयोरुभयोः शुभम् ।७।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—परम कारुणिक ऋषि श्रेष्ठ ! आज तुमने वहुत ही सुन्दर प्रश्न मुझसे पूछा है । आप सावधान होकर श्रवण करो मैं उसका उत्तर तुम्हें भली भाँति देता हूँ ।१। हे विपेन्द्र देव ! परम तपस्वी महेश्वर और जगज्जननी पार्वती अपने उन दोनों पुत्रों की अद्भुत बाल लीलाओं को देखते हुए परम प्रसन्नता प्राप्त करने लगे ।२। उन दोनों का माता-पिता के लालन से सुख दिन दूना समृद्ध हो रहा था और वे सर्वदा प्रेम के साथ बाल-क्रीड़ा का क्षानन्द लाभ करने लगे ।३। हे मुनिराज ! शिव के दोनों पुत्र परम पितृ-भक्ति से युक्त होकर अपने माता-पिता की सेवा सुश्रूषा करने में संलग्न हो ग्रये ।४। इस तरह शिव और शिवा का षण्मुख और लम्बोदर में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के तुल्य आये दिन प्रीति का भाव बढ़ने लगा ।५। हे देवर्षि ! एक दिन प्रेम के साथ एकान्त में स्थित शिव और गौरी परस्पर में विचार कर रहे थे । ।६। वे कहने लगे कि अब हमारे ये दोनों ही पुत्र विवाह संस्कार के योग्य हो गये हैं सो इनका विवाह किसी रीति से करना चाहिये ।७।

षण्मुखश्च प्रियतमो गणेश्च तथैव च ।
इति चितासमुद्विग्नौ लीलानन्दौ बभुवतुः ।८।
स्वपित्रोर्मतमाज्ञाय तौ सुतावपि संस्पृहौ ।
तदिच्छया विवाहार्थं बभूबतुरथो मुने ।९।
अह च परिणेष्यामि ह्यहं चव पुनः पुनः ।
परस्परं च नित्य व विवादे तत्परावुभौ ।१०।
श्रुत्वा तद्वचनं तौ च दंपती जगतां प्रभु ।
लौकिकाचारमाश्रित्यं विस्मय परमं गतो ।११।
कि कर्तव्यं कथं कार्यो विवाहविधिरेतयोः ।
इति निश्चित्य ताभ्यां वै युक्तिश्च रचितादभुता ।१२।
कदाचित्सगये स्थित्वा समाहूय स्वपुत्रकौ ।

कथयामासतुस्तत्र पुत्रयोः पितरौ तदा ।१३।
अस्माकं नियम पूर्वं कृतश्च सुखदो हि वाम् ।
श्रूयतां सुसुतौ प्रीत्या कथयावो यथार्थकम् ।१४

हमारे तो ये दोनों ही अतिशय प्रीति के पात्र परम प्रिय हैं। इस प्रकार कुमार और गणेश के विषय में विचार करते हुए आनन्दित हो रहे थे ।८। हे मुनिवर ! जब अपने माता-पिता की यह इच्छा जानते हुए दोनों कुमारों के मन में भी एक ही साथ अपने-अपने विवाह के सम्पादन की इच्छा उत्पन्न हो गई ।९। तब दोनों अपने माता-पिता के समक्ष में बैठकर प्रार्थना करने लगे कि मैं अपना विवाह पहिले करूँगा और इस प्रकार से उस समय विवाद बढ़ने का आरम्भ हो गया ।१०। जगत् के माता-पिता महेश्वर-भवानी अपने दोनों बेटों के विवादपूर्ण वचन सुनकर लोकाचार के आश्रय से परम विस्मित होकर सोचने लगे ।११। किस तरह से इन दोनों का विवाह एक साथ सम्पन्न होने के विषय में क्या उपाय किया जावे—ऐसा विचार करते हुए उस समय उन्होंने एक युक्ति खोज निकाली ।१२। इसके अनन्तर एक दिन भवानी और महेश ने अपने दोनों पुत्रों को अपने पास बुलाकर कहा ।१३। हमने तुम दोनों को सुख हो—इसके लिये एक नियम बना दिया है। उसे तुम दोनों प्रेम के साथ श्रवण करो। हम उसे ठीक ठीक बतलाते हैं।१४।

समौ द्वावपि सत्पुत्रौ विशेषो नात्रलभ्यते ।
तस्मात्पणः कृतः शंदः पुत्रयोरुभयोरपि ।१५।
यश्चैव पृथिवीं सर्वां क्रांत्वा पूर्वमुपाव्रजेत् ।
तस्यैव प्रथमं कार्यो विवाहः शुभलक्षणः ।१६।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा शरजन्मा महाबलः ।
जगाम मन्दिरात्तूर्णं पृथिवीक्रमणाय वै ।१७।
गणनाथश्च तत्रैव संस्थितो बुद्धिसत्तमः ।
सुबुद्ध्या सविचार्येति चित्त एवं पुनः पुनः ।१८।
किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं लघितुं नैव शक्यते ।
क्रोशमात्रं गतः स्याद्वै गम्यते न मया पुनः ।१९।

किं पुनः पृथिवीमेतां क्रांत्वा चोपार्जितं सुखम् ।
विचार्येति गणेशस्तु यच्चकार शृणुष्व तत् ।२०।
स्नानं कृत्वा यथान्यायं समागत्य स्वयं मृमम् ।
उवाच पितरं तत्र मातरं पुनरेव सः ।२१।

तुम दोनों हमारे परम प्रिय आत्मज होने के कारण समान भाव से ही प्यार के पात्र होते हो । इसमें कुछ भी कोई विशेषता नहीं हैं । हमने अब तुम दोनों ही के लिये एक प्रतिज्ञा की है और वह यह है ।१५। तुम दोनों में इस समस्त भूमि मण्डल की पूर्ण परिक्रमा देकर जो भी यहाँ पहिले आ जायगा उस ही का शुभ विवाह पहिले किया जावेगा ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता के ऐसे प्रतिज्ञायुक्त वचनों को सुनते ही महा बलवान् कुमार कार्त्तिकेय तुरन्त ही पृथ्वी की प्रदक्षिणा पूरी करने के लिये घर से चल दिये ।१७। परम बुद्धिमान् गणेश वहीं स्थित होकर बार-बार अपने मनमें बुद्धि से विचार करने में मग्न हो गए ।१८। अब क्या उपाय करना चाहिए ? मैं किसी भी तरह परिक्रमा नहीं कर सकता और मुझमें तो एक कोश तक भी चलने की शक्ति नहीं है । कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? ।१९। इस समस्त भूमण्डल की परिक्रमा को पूरा कर देना तो बहुत ही कठिन कार्य हैं—ऐसा विचार करते हुए मतिमान् गणेश जी ने जो कुछ अद्‌भुत उपाय किया मैं उसे तुमको सुनाता हूँ सो श्रवण करो ।२०। गणेश्वर ने भली-भांति स्नानादि से शुद्ध होकर अपने माता-पिता से विनयान्वित होकर प्रार्थना की ।२१।

आसने स्थापिते ह्यत्र पूजार्थं भवतोरिह ।
भवंतौ संस्थितौ तातौ पूर्य्यतां मे मनोरथः ।२२।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य पार्वतीपरमेश्वरौ ।
अस्थातामासने तत्र तत्पूजाग्रहणाय वै ।२३।
तेनाथ पूजितौ च प्रक्रान्तौ च पुनः पुनः ।
एवं च कृतवान् सप्त प्रणामांस्तु तथैव सः ।२४।
बद्धांजलिरथोवाच गणेशो बुद्धिसागरः ।
स्तुत्वा वहुतिथस्तात पितरौ प्रेमविह्वलौ ।२५।

भो मातर्भो पितस्त्वं च श्रृणु मे परमं वचः ।
शीघ्रं चैवात्र कर्तव्यो विवाहः शोभनो मम ।२६।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा गणेशस्य महात्मनः ।
महाबुद्धिनिधिं तं तौ पितरावूचतुस्तदा ।२७।
प्रकामेत भवान्सम्यक् पृथिवीं च सकाननाम् ।
कुमारो गतवांस्तत्र त्वं गच्छ पुर आव्रज ।२८।

मैं पहिले आप दोनों को सिंहासन पर विराजमान कर आपकी अर्चना करना चाहता हूं सो आप मेरे समीप विराज कर मेरा यह मनोरथ पूर्ण करने की कृपा करें ।२२। ब्रह्माजी ने कहा—ऐसी गणेश की पवित्र प्रार्थना सुनकर पार्वती और परमेश्वर दोनों उनकी अर्चा स्वीकार करने के लिये सिंहासन पर बैठ गये ।२३। गणपति ने भक्ति के साथ उन दोनों का अर्चन कर प्रणामपूर्वक सात बार परिक्रमा की ।२४। बुद्धि के सागर गणेशजी ने प्रेम विभोर होकर हाथ जोड़ते हुए माता-पिता की बहुत स्तुति की ।२५। उसी समय गणेशजी ने कहा—हे माता ! हे पितृदेव ! आप दोनों अब मेरी प्रार्थना सुनकर शीघ्र ही मेरा विवाह करने की कृपा करें ।२६। यह प्रार्थना सुनकर दोनों शिव और पार्वती गणेश से कहने लगे ।२७। जिस तरह कुमार कार्त्तिकेय पृथ्वी परिक्रमा के लिए चले गए हैं वैसे ही तुम भी पर्वत कानन के सहित भू मण्डल की प्रदक्षिणा करके शीघ्रता से आ जाओ ।२८।

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पित्रोर्गणपतिर्द्रुतम् ।
उवाच नियतस्तत्र वचनं क्रोधसंयुतः ।२९।
भो मातर्भो पितर्धर्मरूपौ प्राज्ञौ युवां मतौ ।
धर्मतः श्रूयतां सम्यग्वचनं मम सत्तमौ ।३०।
मया तु पृथिवी क्रांता सप्तवारं पुनः पुनः ।
एवं कथं ब्रुवाते वै पुनश्च पितराविह ।३१।
तद्वचस्तु तदा श्रुत्वा लौकिकीं गतिमाश्रितौ ।
महालीलाकरौ तत्र पितरावूचतुश्च तम् ।३२।
कदा क्रांता त्वया पुत्र पृथिवी सुमहत्तरा ।

सप्तद्वीपा समुद्रांता महद्भिर्गहनैर्युता ।३३।
तयोरेवं वचः श्रुत्वा शिवाशङ्करयोर्मुने ।
महाबुद्धिनिधिः पुत्रो गणेशो वाक्यमब्रवीत् ।३४।
भवतोः पूजनं कृत्वा शिवाशंकरयोरहम् ।
स्वबद्ध या हि सकुद्रान्तपृथ्वी ःतपरिक्रमः ।३५।

ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता के ये वचन सुनकर गणेश क्रोध-पूर्वक कहने लगे ।२६। हे माता ! हे पिता ! आप दोनों ही धर्म स्वरूपी और महामनीषी हैं । मैं इस समय जो धर्म से युक्त प्रार्थना करता हूँ उसे आप श्रवण करने की कृपा करें ।६०। गणेशजी ने कहा—मैंने तो एक बार नहीं सात बार इस पृथ्वी के समस्त मण्डल की पूरी परिक्रमा करली है फिर आप मुझे क्यों पृथ्वी की परिक्रमा करने की आज्ञा दे रहे हैं ? ।३१। ब्रह्माजी ने कहा—गणेश के ये वचन सुनकर लौकिक गति-विधि का आश्रय ग्रहण करते हुए महा लीलाधारी दोनों ने कहा ।३२। हे पुत्र ! तुमने भूमण्डल की परिक्रमा किस समय पूरी कर डाली है ? प्रदक्षिणा न करके भी ऐसी बात क्यों कहते हो ? यह भूमि तो सात द्वीपों से सागरान्त पर्यन्त बड़े-बड़े विशाल पर्वतों से युक्त है ।३३। ब्रह्माजी ने कहा—अपने माता-पिता शिव पार्वती के ये वचन सुनकर महा मतिमान् गणेश जी ने उत्तर दिया ।३४। गणेशजी ने कहा—मैंने आप दोनों माता-पिताओं का पूजन कर सात बार परिक्रमा कर ली है। मैंने तो अपनी बुद्धि से समस्त भूमण्डल की भली भाँति पहले ही प्रदक्षिणा समाप्त करली है ।३५।

इत्येवं वचनं वेदे शास्त्रे वा धर्मसञ्चये ।
वर्त्तते किं च तत्तथ्य न हि किं तथ्यमेव वा ।३६
पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रांतिं च करोति यः ।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फल भवति निश्चितम् ।३७
अपहाय गृहे वो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत् ।
तस्य पाप तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ।३८
पुत्रस्त्र च महात्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम् ।
अन्यतीर्थं तु दुरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ।३९

इदं संनिहितं तार्थं सुलभं धर्मसाधनम् ।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ।४०
इतिशास्त्राणि वेदाश्च भाषन्ते यन्निरन्तरम् ।
भवद्भ्यां तत्प्रकर्त्तव्यमसत्यं पुनरेव च ।४१
भवदीयं त्विद रूपमसत्यं च भवेदिह ।
तदा वेदोऽप्यसत्यो वै भवेदिति न संशयः ।४२

यह बात तो वेदों और धर्म शास्त्रों में लिखी हुई है । यह शास्त्र के वचन सत्य हैं या असत्य हैं इसका निर्णय करके आप ही बताने की कृपा करें ।३६। शास्त्र कहता है कि जो अपने माता-पिता का अर्चन करके उनकी परिक्रमा कर लेता है उसे इस भूमण्डल की परिक्रमा पूर्ण करने के फल की सुनिश्चित प्राप्ति हो जाती है ।३७। जो कोई अपने माता-पिता को घर में यों ही छोड़कर तीर्थाटन करने को जाया करता है उस बुद्धिहीन को उनके मार देने का महा-पाप लगता है । अतएव उनकी आज्ञा प्राप्त करके ही कहीं जाना चाहिए ।३८। पुत्र के लिये माता-पिता की सेवा में संलग्न रहना ही सबसे बड़ा तीर्थ होता है । माता-पिता के चरणों की सेवा तो घर में ही रहकर सम्पन्न होती है और अन्य तीर्थों के लिए तो दूर जाना पड़ता है ।३९। यह परम पुन्यमय तीर्थ सर्वदा समीप में स्थित और परम सुलभ तथा समस्त धर्मों का साधन स्वरूप है । पुत्र की स्त्री के लिए भी घर में इसी को परम शोभन तीर्थ बतलाया गया है ।४०। वेद और समस्त धर्मशास्त्र इसी बात को निरन्तर बतलाते हैं, आपको भी इसे मानना चाहिए नहीं तो ये सब शास्त्र झूंठे हो जायेंगे ।४१। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपका यह सत्य स्वरूप भी असत्य हो जायगा और इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि इसी भाँति ये वेद भी असत्य हो जायेंगे ।४२।

शीघ्रं चः भवितव्यो मे विवाहः क्रियतां शुभः ।
अथवा वेदशास्त्रञ्च व्यलीकं कथ्यतामिति ।४३
द्वयोः श्रेष्ठतमं मध्ये यत्स्यात्सम्यग्विचार्य तत् ।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन पितरौ धर्मरूपिणौ ।४४

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः स गणेशः प्रकृष्टधीः ।
विरराम महाज्ञानी तदा बुद्धिमतां वरः ।४५।
तौ दंपती च विश्वेशौ पार्वतीशंकरौ तदा ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विस्मयं परमं गतौ ।४६।
ततः शिवा शिवश्चैव पुत्रं बुद्धिविचक्षणम् ।
संप्रशस्योचतुः प्रीत्या तौ यथार्थप्रभाषिणम् ।४७।
पुत्र ते विमला बुद्धिः समुत्पन्न महात्मनः ।
त्वयोक्तं यद्वचश्चैव ततश्चैव च नान्यथा ।४८।
समुत्पन्ने च दुःखे च यस्य बुद्धिर्विशिष्यते ।
तस्य दुःखं विनश्येत सूर्ये दृष्टे तथा तमः ।४९।

अब आपको मेरा शुभ विवाह यथा सम्भव शीघ्रातिशीघ्र कर देना चाहिए या फिर आप इस वेद-शास्त्र की माननीय मर्यादा को व्यर्थ बन दीजियेगा ।४३। आप धर्म के स्वरूप वाले माता-पिता हैं अतः इन दोनों बातों के मध्य में जो भी श्रेष्ठ समझें उसे ही यत्न के साथ करने की कृपा करें ।४। ब्रह्माजी ने कहा—महाज्ञानी और महायतियों में परम श्रेष्ठ पार्वती के पुत्र गणेशजी ने प्रसन्नता के साथ इतना कहकर मौन का अवलम्बन ले लिया ।४५। उस समय गणेश के इन वचनों को सुनकर समस्त विश्व की माता पार्वती और जगत पिता परमेश्वर परम आश्चर्यान्वित हुए ।४६। उस समय भवानी महेश्वर ने अपने आत्मज गणेश की इस तरह विलक्षण बुद्धि से पूर्ण बातें सुनकर उसकी अत्यधिक बड़ाई की और प्रेम के साथ कहा, हे पुत्र ! तुम सर्वथा यथार्थ कह रहे हो ।४७। शिव और रुद्राणी दोनों ने कहा—हे पुत्र ! निश्चय ही तुम्हारी लोकोत्तर निर्मल बुद्धि महात्माओं जैसी है। तुमने जो कुछ भी इस समय कहा है वह बिल्कुल यथार्थ है। इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।४८। भुवन भास्कर के उदय हो जाने पर अन्धकार की भाँति सङ्कट का समय आ पड़ने पर भी जिसकी बुद्धि विशेष रूप से सुस्थिर बनी रहती है उसका दुःख नष्ट हो जाता है ।४९।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।

कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ।५०।
वेदशास्त्रपुराणेषु बालकस्य यथोदितम् ।
त्वया कृतं तु तत्सर्वं धर्मस्य परिपालनम् ।५१।
सम्यक्कृतं त्वथा यच्च तत्केनापि भवेदिह ।
आवाभ्यां मानित तच्च नान्यथा क्रियतेऽधुना ।५२।
एत्युक्त्वा तौ समाश्वास्य गणेशं बुद्धिसागरम् ।
विवाहकरणे चास्य मति चक्रतुरुत्तमाम् ।५३।

वस्तुतः जिसमें विवेक बुद्धि होती है उसी में बल का भी निवास रहता है । जो बुद्धिहीन होता है उसमें बल कभी भी नहीं रह सकता है । बुद्धिमान् खरगोश ने तो बुद्धि के द्वारा महान् मदोन्मत्त सिंह को कुंए में डालकर नष्ट कर दिया था ।५०। वेद और शास्त्रों में एवं महापुराणों में जैसा भी बालकों का कर्त्तव्य बताया गया है तुमने उसका पूर्ण रूप से अक्षरशः पालन किया है ।५१। हे पुत्र ! इस समय तुमने जो कुछ किया उसे अन्य कोई भी नहीं कर सकता । तुम्हारी बात को अन्यथा कर देने की सामर्थ्य किसी में नहीं है । हम दोनों ने अब तुम्हारी बात मान ली है ।५२। ब्रह्माजी ने कहा—इस तरह महादेव पार्वती दोनों ने बुद्धि के सागर गणेश को आश्वासन देते हुए उनके विवाह कर देने की इच्छा प्रकट की ।५३।

रुद्र संहिता— युद्ध खण्ड

।। शंखचूड और शिव का दूत प्रेषण ।।

तत्र स्थित्वा दानवेन्द्रो महान्तं दानवेश्वरम् ।
दूत कृत्वा महाविज्ञं प्रेषयामास शंकरम् ।१।
स तत्र गत्वा दूतश्च चन्द्रभालं ददर्श ह ।
वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।२।
कृत्वा योगासनं दृष्ट्या मुद्रायुक्त च सस्मितम् ।
शुद्धिस्फटिकसंकाशं ज्वलंतं ब्रह्मतेजसा ।३।

त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माबरावृतम् ।
भक्तमृत्युहरं शांतं गौरीकांतं त्रिलोचनम् ।४।
तपसां फलदातारं कर्त्तारं सर्वसम्पदाम् ।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम् ।५।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम् ।
विश्वेश्वरं विश्वकरं विश्वसंहारकारणम् ।६।
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारकम् ।
ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम् ।७।

श्रीसनत्कुमार जी ने कहा— शङ्खचूड ने वहीं पर स्थित होकर महान् दानवेश्वर को अपना दूत बनाकर भगवान् शंकर के समीप में भेजा ।१। दूत ने कोटि सूर्य के समान कान्ति वाले वट के मूल में विराजमान भगवान शङ्कर के दर्शन किये ।२। भगवान शिव योगासन की मुद्रा में बैठकर दृष्टि लगाये हुए हास्ययुक्त थे स्फटिक मणि के तुल्य ब्रह्म-तेज से पूर्ण प्रकाशित हो रहे थे ।३। दूत ने देखा कि शिव त्रिशूल और पट्टिश लेकर व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं । गौरी के पति त्रिलोचन परम शान्ति की मुद्रा में स्थित अपने भक्तों की मृत्यु का हरण करने वाले हैं । शिव भक्तों को तपश्चर्या के फल प्रदान करने वाले, समस्त सम्पत्तियों के दाता, शीघ्रातिशीघ्र भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के कारण कातर होकर प्रसन्न होने वाले हैं ।४–५। भगवान् शङ्कर विश्व के स्वामी—विश्व के बीज-रूप—स्वयं विश्व स्वरूप—विश्व के उत्पादक—विश्व के भरण-पोषण कर्त्ता और विश्व के संहार करने वाले देव हैं ।६। ये कारण के भी कारण, नरक रूपी समुद्र से पार करने वाले—ज्ञान के प्रदान-कर्त्ता ज्ञान के बीज रूप और सर्वदा स्वयं ज्ञानानन्द में निमग्न एवम् सनातन हैं । शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने इस सुन्दर स्वरूप में समन्वित शिव को देखा ।७।

अवरुह्य रथाद्दूतस्तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः ।
शंकरं सकुमारं च शिरसा प्रणनाम सः ।८।

वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं तत्पुरतः स्थितम् ।
लोकाशिष ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः ।९।
अथासौ शंखचूडस्य दूतः परमशास्त्रवित् ।
उवाच शंकरं नत्वा करौ बद्ध्वा शुभं वचः ।१०।
शंखचूडस्य दूतोऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ।
वर्तते ते किमिच्छाऽद्य तत्वं ब्रूहि महेश्वरः ।११।
इति श्रुत्वा च वचनं शंखचूडस्य शंकरः ।
प्रसन्नात्म महादेवो भगवांस्तमुवाच ह ।१२।
शृणु दूत महाज्ञ वचो मम सुखावहम् ।
कथनीयमिदं तस्मै निर्विवादं विचार्य च ।१३।
विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित् ।
मरीचिस्तस्य पुत्रश्च कश्यपस्तत्सुतः स्मृतः ।१४।

दानवेश्वर ने अपने रथ से उतरकर परम सुकुमार स्वरूप वाले शंकर को सादर प्रणाम किया ।८। भगवान शिव के वाम भाग में भद्रकाली और आगे स्कन्द विराजमान थे । काली देवी, षण्मुख और शङ्कर ने लोक-रीति का निर्वाह करते हुए आशीर्वाद दिया ।९। उस समय शास्त्र के ज्ञाता शङ्खचूड के दूत दानवेश्वर ने दोनों अपने हाथ जोड़कर शिवजी से प्रार्थना की ।१०। दूत ने कहा—हे महेश्वर ! मैं शङ्खचूड का दूत होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । आपकी जो भी इच्छा हो वह मुझसे तात्विक रूप से कहिए ।११। सनत्कुमार ने कहा—शङ्खचूड के दूत दाननेश्वर के ये वचन श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महादेव बोले ।१२। श्री शिव ने कहा—हे महापण्डित दूत ! मेरा सन्देश सावधानी से सुनकर तुम अपने स्वामी से विचारपूर्वक निर्विवाद कह देना ।१३। ब्रह्मा इस समस्त जगत के पिता और धर्म को पूर्णरूप से जानने वाले । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि और उनके पुत्र कश्यप हुए ।१४।

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै निज कन्यास्त्रयोदश ।
तास्तेत्र च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्द्धिनी ।१५।

चत्वारस्ते दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः ।
चेष्वेको विप्रशित्तिस्तु महावलपराक्रमः ।१६।
तत्पुत्रो धार्मिको दभो दानवेन्द्रो महामतिः ।
तस्य त्वं तनयः श्रेष्ठो धर्मात्मा दानवेश्वरः ।१७।
पुरा स्वं पार्षदो गोपेष्वेव च धार्मिकः ।
अधुना राधिकाशापाज्जातस्त्वं दानवेश्वरः ।१८।
दानवीं योनिमायातस्तत्वतो न हि दानवः ।
निजवृत्तं पुरा ज्ञात्वा देववैरं त्यजाधुना ।१९।
द्रोहं न कुरु तैः सार्द्धं स्वपदं भुंक्ष्व सादरम् ।
नाधिकं सविकारं च कुरु राज्यं विचार्य च ।२०।
देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष दानव ।
निजराज्ये सुखं तिष्ठ तिष्ठंतु स्वपदे सुराः ।२१।

प्रजापति दक्ष ने अपनी तेरह कन्याऐं कश्यप को दीं । उनमें एक परम पतिव्रता दनु नाम वाली कन्या थी जो कि उनके सौभाग्य को बढ़ाने वाली थी ।१५। उससे महान् तेजस्वी चार दानव पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया । इनमें एक विप्रचित्ति नाम वाला अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी था ।१६। विप्रचित्ति का पुत्र अति बुद्धिमानी एवं परम धार्मिक दानवराज दम्भ उत्पन्न हुआ उसके प्रिय पुत्र धर्मात्मा तुमने जन्म लिया ।१७। हे दानवेश्वर ! पहिले तुम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय पार्षद गोपों में एक प्रमुख गोप थे । इस समय श्री राधिका के शाप के कारण दानवेश्वर हुए हो ।१८। तुम शापवश ही इस दानव योनि में आ गये हो वस्तुतः दानव नहीं हो, इसलिए तुम अपना प्राचीन हाल समझकर देव-वृन्द के साथ वैरभाव को त्याग दो ।१९। देवताओं के साथ किसी प्रकार का द्रोह न करते हुये अपने पद का सानन्द उपभोग करो । ऐसा करने में विचार पूर्वक देखो तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं है ।२०। हे दानवेश्वर ! मेरी प्रीति के विषय में विचार कर देवताओं को उनका राज्य लौटा दो । तुमको सुखपूर्वक अपने ही राज्य में स्थित रहना चाहिये । देवगण अपने पद पर स्थित रहें, इसी में भलाई है ।२१।

अलं भूतविरोधेन देवद्रोहेण किं पुनः ।
कुलीनाः शुद्ध कर्माणः सर्वे कश्यपवंशजाः ।२२।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
ज्ञातिद्रोहजपापस्य कलां नार्हंति षोडशीम् ।२३।
इत्यादिबहुवार्ता च श्रुतिस्मृतिपरां शुभाम् ।
प्रोवाच शंकरस्तस्मै बोधयन् ज्ञानमुत्तमम् ।२४।
शिक्षितः शंखचूडेन स दूतस्तर्कवित्तमः ।
उवाच वचनं नम्रो भवितव्यविमोहितः ।२५।
त्वया यत्कथितं देव नान्यथा तत्तथा वचः ।
तथ्यं किंचिद्यथार्थं च श्रूयतां मे निवेदनम् ।२६।
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत् ।
तत्किमीशासुराणां च न सुराणां वद प्रभो ।२७।
सर्वेषामिति चेत्तद्वै तदा वच्मि विचार्य च ।
निर्णयं ब्रूहि तत्राद्य कुरु संदेहभंजनम् ।२८।

साधारण प्राणियों के साथ भी विरोध भाव रखना अच्छा नहीं होता है फिर देवगण से विरोध रखने के बावत क्या कहा जावे ? ये सभी शुद्ध कर्मों के करने वाले परम कुलीन कश्यप ऋषि की सन्तान हैं ।२२। ब्रह्म-हत्या आदि जितने भी महाघोर पाप होते हैं वे सभी अपनी ज्ञाति से द्रोह करने के पाप की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते हैं ।२३। सनत्कुमार जी ने कहा—इस रीति से श्रुति एवं स्मृति के सिद्धान्त से अनुमत अनेक उपदेशमय बातें कहते हुये भगवान् शंकर ने उसे भली-भाँति समझाकर अपना ज्ञान स्वरूप सन्देश कहा ।२४। इसके अनन्तर शङ्खचूड़ के द्वारा समझाये हुये तर्क के जानने वाले उस दूत ने भवितव्यता से मोहित होकर नम्रतापूर्वक शिव से कहा ।२५। शङ्खचूड़ के दूत ने कहा—हे देव ! आपने जो कुछ भी मुझ से कहा वह सर्वथा सत्य है, किन्तु अब मैं जो भी निवेदन करना चाहता हूँ उसे भी आप सत्य-सत्य सुनने की कृपा करें ।२६। हे आदिदेव ! अभी आपने ज्ञाति के साथ द्रोह को एक महान् पाप बतलाया है । यह अक्षरशः सत्य

है किन्तु क्या यह बात केवल असुरों के लिये ही है देववृन्द के लिये नहीं हे ? ।२७। यदि दोनों पक्षों के लिये यह जाति-द्रोह के महान् पाप की बात है तो फिर मैं विचार करके कुछ निवेदन करता हूँ, आप मेरे सन्देह का निवारण करिये ।२८।

मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ।
शिरश्छेदं चकारासौ कस्माच्चक्री महेश्वर ।२९
त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं कुतः ।
भवाञ्चकार गिरिश सुरपक्षीति विश्रुतम् ।३०
गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः ।
सुतलादि समुद्धर्तुं तद्द्वारे च गदाधरः ।।३१
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः ।
शुंभादयोऽसुराश्चैव कथं देवैर्निपातिताः ।३२
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः ।
क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः ।३३
क्रीडाभांडमिदं विश्वं कालस्य परमात्मनः ।
स ददाति यदा यस्मै तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा ।३४
देवदानवयोर्वैरं शश्वन्नैमित्तिकं सदा ।
पराजयो जयस्तेषां कालाधीनः क्रमेण च ।३५

हे महेश्वर ! यदि ऐसा सभी के लिये है तो फिर आपने मधुकैटभ श्रेष्ठ दैत्य का मस्तक चक्र से क्यों काटा था जब अन्य कोई कारण न था ।२९। हे गिरीश ! आपने त्रिपुरासुर के साथ किस कारण से महायुद्ध किया था और फिर क्यों उसे भस्मीभूत बना दिया ? आपने देववृन्द का पक्ष लेकर उनका ही कल्याण किस लिये किया था ? ।३०। राजा बलि का सब कुछ हरण करने के पश्चात् भी उसको पाताल लोक में भेजने का क्या कारण था जहाँ कि सर्वथा गदा धारण किये हुए उसके द्वार पर स्थित रहा करते हैं ? ।३१। अपने सहोदर भाई के सहित देवताओं ने हिरण्याक्ष को किस कारण मार गिराया और देवों के ही द्वारा शुम्भादि महाबली दैत्य कैसे मार दिये गये ? ।३२। समुद्र मन्थन के महाप्रयास

में हम सभी ने अत्यन्त घोर श्रम के साथ क्लेश भोगा किन्तु अमृत का पान केवल देवों ने ही करके उस श्रम फल को प्राप्त किया ।३३। यह यह समस्त विश्व काल का एक खिलौना है । परमात्मा-स्वरूप यह काल जब भी जिसको देता है यह ऐश्वर्य उसे प्राप्त हो जाता है ।३४। देवता और दैत्यों के बीच में होने वाले युद्ध तथा बैर का कुछ न कुछ निमित्त रहा करता है । इन में जय और पराजय का होना काल के अधीन होता है ।३५।

तवानयोर्विरोधे च गमनं निष्फलं भवेत् ।
समसम्बन्धिनां तद्वै रोचते नेश्वरस्य ते ।३६
सुरासुराणां सर्वषासीश्वरस्य महात्मनः ।
इयं ते रहिता लज्जा स्पर्द्धाऽस्माभिः सहाधुना ।३७
यतोऽधिका चैव कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये ।
तवैतद्विपरीतं च मनसा संविचार्यताम् ।३८
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सप्रहस्य त्रिलोचनः ।
यथोचित च मधुरमुवाच दानवेश्वरम् ।३९
वयं भक्तपराधीना न स्वतन्त्राः कदापि हि ।
तदिच्छया तत्कर्माण न कस्यापि च पक्षिणः ।४०
पुरा विधिप्रार्थनया युद्धमादौ हरेरपि ।
मधुकैटभयोर्दैत्यवरयोः प्रलयार्णवे ।४१
नेवप्रार्थनया तेन हिरण्यकशिपोः पुरा ।
प्रह्लादार्थं वधोऽकारि भक्तानां हितकारिणा ।४२

आपस में इन दोनों के विरोध में व्यर्थ ही आपको नहीं पड़ना चाहिए । विरोध भाव समान बल की शक्ति वालों का ही उचित हुआ करता है । हे शिव ! आपको विरोध करना शोभा नहीं देता है ।३६। आप तो देव और दैत्य सभी के स्वामी हैं । यह एक बड़ी लज्जा की-सी बात है कि आप जैसे महान् आत्मा वाले का हमारे साथ बैर-भाव रहता है ।३७। जिस जयलाभ में बहुत बड़ी कीर्ति और हार हो जाने पर महती हानि हो, वह बात आपके स्वरूप से सर्वथा विपरीत है । आप

स्वयं इसका विचार मन में करें ।३८। सनत्कुमार जी ने कहा—दान, वेश्वर के ऐसे वचन श्रवण कर महेश्वर हँसते हुए समुचित एवं मधुर वचनों द्वारा उससे बोले ।३९। महेश ने कहा—हे दानवेश्वर ? मैं स्व-तन्त्र नहीं हूँ, सर्वदा अपने भक्तजन के अधीन रहा करता हूँ। उनकी इच्छा के अनुसार ही मुझे कर्म करने को विवश होना पड़ता हैं। हम कभी किसी का भी पक्षपात नहीं किया करते हैं ।४०। सर्व प्रथम विधाता द्वारा प्रार्थना की जाने पर प्रलय-सागर में विष्णु भगवान् ने मधु कैटभ के साथ युद्ध किया था ।४१। देवगण की दीन प्रार्थना पर ही भक्त प्रह-लाद की रक्षा के लिये और भक्तजन के हितार्थ हिरण्यकशिपु का वध विष्णु ने नृसिंह स्वरूप से किया था ।४२।

त्रिपुरैः सह संयुद्धं भस्मत्वकरणं ततः ।
देवप्रार्थनयाऽकारि मयापि च पुरा श्रुतम् ।४३।
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुर्देवप्रार्थनया पुरा ।
आसीच्छुंभादभिर्युद्धं वधस्तेषां तया कृतः ।४४।
अद्यापि त्रिदशः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
स सदेव हरिर्मां च देव शरणामागतः ।४५।
हरिब्रह्मादिकानां च प्रार्थनावशतोऽप्यहम् ।
सुराणामीश्वरो दूत युद्धार्थमगमं खलु ।४६।
पार्षदप्रवरस्त्वं हि कृष्णस्य च महात्मनः ।
ये ये हताश्च दैतेया न हि केऽपित्वया समाः ।४७।
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह ।
देवकार्यार्थमीशौऽहं विनयेन च प्रेषितः ।४८।
गच्छ त्वं शंखचूडं वै कथनीयं च मे वचः ।
स च युक्तं करोत्वत्र सुरकार्यं करोम्यहम् ।४९।
इत्युक्त्वा शंकरस्तत्र विरराम महेश्वरः ।
उत्तस्थौ शंखचूडस्य दूतोऽगच्छत्तदंतिकम् ।५०।

मैंने भी देवगण की प्रार्थना और अतिशय भक्ति की जाने पर त्रिपुरा-

सुर का संहार किया था—यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध ही है । ४३ । सबका वैभव और पद बलात् छीनने वाले तथा देवगण को अत्यन्त कष्ट देने वाले शुम्भ आदि का वध भी जब देवों ने बहुत बार प्रार्थना की थी, किया गया था ।४४। इस समय भी समस्त देवगण पहिले ब्रह्माजी की शरण गये और फिर ब्रह्मा विष्णु मेरी शरण में आये हैं ।४५। हे दूत ! मैं अब हरि तथा ब्रह्मा की प्रार्थना करने पर ही यहां देवगण की ओर से संग्राम करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ ।४६। मैं पुनः तुमको बतला देना चाहता हूँ कि तुम भगवान् कृष्ण के परमोत्तम पार्षद हो, अब तक जितने भी असुर मारे गए हैं तुम्हारे सदृश उनमें एक भी कोई नहीं था ।४७। हे राजन् ! तुम्हारे साथ में संग्राम करने के कार्य में मुझे क्या लज्जा हो सकती है ? यह तो देवों का कार्य ही है जिसे पूर्ण करने के लिये विजय प्रार्थना से प्रेरित होकर मुझ ईश्वर को यहाँ आना पड़ा है । ४८ । अब यहाँ से जाकर तुम शंखचूड़ से स्पष्ट कह देना कि उसके मनमें जो भी रुचे वह वही करे । मुझे तो यहाँ अब देव-कार्य करना ही है । ४९ । इतना कहने के पश्चात् महेश्वर चुप होगये और शङ्खचूड़ के द्वारा प्रेषित वह दूत भी वहां से उठकर अपने स्वामी के समीप चला गया ।५०।

॥ देवता-दानवों का रोमहर्षण युद्ध ॥

स दूतस्तत्र गत्वा च शिववाक्यं जगाद ह ।
सविस्तरं यथार्थं च निश्चयं तस्य तत्वतः ।१।
तच्छ्रुत्वा शखचूडोऽसौ दानवेन्द्रः प्रतापवान् ।
अंगीचकार सुप्रीत्या रणमेव स दानवः ।२।
समारुरोह यानं च सहामात्यैश्च सत्वरः ।
आदिदेश स्वसैन्यं च युद्धार्थं शकरेण च ।३।
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरः ।
स्वयमप्यखिलेशोऽपि संनद्धोऽभूच्च लीलया ।४।
युद्धारम्भो वभूवाशु नेदुर्वाद्यानि भूरिशः ।
कोलाहलश्च संजातो वीरशब्दस्तथैव च ।५।

देवदानवयोर्युद्धं परस्परमभून्मुने ।
धर्मतो युयुधे तत्र देवदानवोर्गण: ।६
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्द्धं च वृषपर्वणा ।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तानां सह धर्मत: ।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—उस दूत ने वापिस जाकर अपने नृपेन्द्र को भगवान् शङ्कर से होने वाली पूरी बातें सुना दीं और उनके अन्तिम निश्चय को विस्तृत रूप से बतला दिया ।१। यह सब श्रवण करने के अनन्तर दानवों के राजा प्रतापी शङ्खचूड ने सप्रेम युद्ध करना स्वीकृत कर लिया ।२। शङ्खचूड अपने समस्त मन्त्रिगण के सहित विमान पर चढ़कर तैयार हो गया और शिव के साथ संग्राम करने का आदेश सेना को शीघ्र ही दे दिया ।३। उधर शङ्कर भगवान् भी समस्त देवताओं तथा सेना को प्रेरित लीला के सहित युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए ।४। उस समय तुरन्त ही युद्ध का आरम्भ हो गया । युद्ध क्षेत्र में बहुत प्रकार के वाद्यों का वादन तथा वीर योद्धाओं का महान कोलाहल सर्वत्र छा गया ।५। हे मुनिराज ! तब देव और दानवों का आपस में अत्यन्त घोर धर्म युद्ध होना शुरू हो गया ।६। इन्द्रदेव वृषपर्वा के साथ और भास्कर विप्रचित्ति के साथ धर्मयुद्ध में प्रवृत्त हो गए ।७।

दम्भेन सह विष्णुश्च चकार परमं रणम् ।
कालासुरेण कालश्च गोकर्णे हुताशन: ।८
कबेर: कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च ।
भयंकरेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा ।९
कालम्बिकेन वरुणश्चंचलेन समीरण: ।
बुधश्च चटपृष्टेन रक्ताक्षेण शनैश्चर: ।१०
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसा गणै: ।
अश्विनौ दीप्तिमद्भ्या च धूम्रेण नलकूबर: ।११
धुरन्धरेण धर्मश्च गणकाक्षेण मङ्गल: ।
शोभाकरेण वैश्वन: पिपिरेन च मन्मथ: ।१२

गोकामुखेन चूर्णेन खड्गनाम्ना सुरेण च ।
धूम्रेण सहलेनापि विश्वेन च प्रतापिना ।।१३
पलाशेन द्वादशार्का युयुधुधर्मतः परे ।
असुरैरमराः सार्द्धं शिवसाहाय्यशालिनः ।।१४

विष्णु दम्भ दैत्य से, कालदेव कालासुर से और हुताशन गोकर्ण से घोर युद्ध करने लगे ।।८।। कुवेर ने कालकेय से, विश्वकर्मा ने मय नामक असुर से, मृत्यु ने भयंकर से, यमराज का संहारक से, वरुण का कालाम्बिक से, पवनदेव का चंचलासुर से, बुध का घटपृष्ठ से, शनिदेव का रक्ताक्ष नाम वाले असुर से, वर्चसगण तथा रत्नसार के साथ जयन्त का, अश्विनीकुमार का दीप्ति मानों के साथ और नलकूबर का धूम्र के साथ महान युद्ध हुआ ।।६-११।। धर्म और धुरन्धर का, मङ्गल और गणकाक्ष का, वैश्वानर और शोभाकार का तथा मन्मथ और पिपिर का धर्म-युद्ध होने लगा । द्वादश आदित्य गोकामुख, चूर्णखड्ग, असुर, धूम्र संहल, विश्वप्रतापी और पलाश के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये और भगवान शंकर की सहायता प्राप्त कर देवताओं ने दैत्यगण से अत्यन्त भयानक युद्ध किया ।।१२-१४।।

एकादश महारुद्राश्चैकादशभयंकरैः ।
असुरैर्युयुधुर्वीरै र्महाबलपराक्रमैः ।।१५
महामणिश्च युयुधे चोग्रचंडादिभिःसह ।
राहुणा सह चन्द्रश्च जीवः शुक्रेण धर्मतः ।।१६
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवप्रवरैः सह ।
युयुधश्च महायुद्धे नोक्ता विस्तरतः पृथक् ।।१७
वटमूले तदा शभुस्तस्थौ काल्या सुतेन च ।
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने ।।१८
रत्नसिंहासन रम्ये कोटिदानवसंयुतेः ।
उवास शंखचूडश्च रत्नभूषणभूषितः ।।१९
महायुद्धो बभूवाथ देवासुरविमर्दनः ।
नानायुधानि दिध्यानि चलंतिस्म महामृधे ।।२०

गदर्ष्टिपट्टिशाश्चक्रभुशुंडिप्रासमुद्गराः ।
निस्त्रिंशभल्लपरिघाः शक्त्युन्मुखरपश्वधाः ॥२१
शरतोमरखड्गाश्च शतघ्न्यश्च सहस्रशः ।
भिंदिपालादयश्चान्ये वीरहस्तेषु शोभिताः ॥२२

एकादश महारुद्रों ने महाभयंकर, महाबली, महापराक्रमी ग्यारह असुरों से युद्ध किया। महामणि और उग्रचण्ड चन्द्र और राहु, देवगुरु बृहस्पति और शुक्र परस्पर में युद्ध करने लगे ॥१५—१६॥ उस समय नन्दीश्वर प्रभृति समस्त शिव गण भी उन सभी दानवों के साथ महायुद्ध में प्रवृत्त हो गए।१७। भगवान् महेश्वर, महाकाली तथा अपने पुत्र के साथ वट वृक्ष के मूल के निकट विराजमान हो रहे थे और उनकी समस्त सेना निरन्तर युद्ध कर रही थी ॥१८॥ इसी तरह रत्नजटित रमणीय सिंहासन पर करोड़ों दैत्यों के साथ बहुमूल्य मणि एवं रत्नों के अनेक आभरणों से समलंकृत दानवेन्द्र शंखचूड विराजमान हो रहा था ॥१९॥ इस युद्ध भूमि में देवासुरों का प्राणों का संहारक महायुद्ध हो रहा था और उसमें विविध प्रकार के अनेक दिव्य आयुधों का प्रहार किया जा रहा था ॥२०॥ गदा, पट्टिश, ऋष्टि, भुशुण्डी, चक्र, मुद्गर, पाश, भल्ल निस्त्रिंश, परिघ, शक्ति, परशु, सन्मुख, शर, तोमर, खड्ग, भिन्दिपाल और सहस्रों शतघ्नी (तोपें) आदि महावीरों के हाथों में शोभित होकर प्रयोग में लाये जा रहे थे ॥२१-२२॥

शिरांसि चिच्छिदुश्चैभिर्वीरास्तत्र महोत्सवाः ।
वीराणन्मुभयोश्चैव सैन्ययोर्गर्जतो रणे ॥२३
गजास्तुरंगा बहवः स्यन्दनाश्च पदातयः ।
सारोहवाहा विविधास्तत्रासन् सुविखंडिता ॥२४
निकृत्तबाहूरुकरकटिकर्णयुगांघ्रयः ।
संछिन्नध्वजबाणासितनुत्रवरभूषणाः ॥२५
समुद्धतकिरीटैश्च शिरोभिः सह कुंडलैः ।
संरंभनष्टै रास्तीर्णा बभौ भूः करभोरुभिः ॥२६

महाभुजैः साभरणैः संछिन्नैः सायुधैस्तथा ।
अंगरन्यैश्च सहसा पटलैर्वा ससारघैः ॥२७
मृधे भटाः प्रधातवंतः कबंधान् स्वशिरोक्षिभिः ।
पश्यंतस्तत्र चोत्पेतुरुद्यतायुधसद्भुजैः ॥२८

दोनों दलों के वीर योधागण महा गर्जना तथा तर्जन के साथ अपने अतुल पराक्रम से शत्रुओं के शिरों का छेदन कर रहे थे ॥२३॥ उस समय हाथी अश्व, रथ पैदल और रथादि अनेक सवारियाँ नष्ट भ्रष्ट होकर गिरने लगीं ॥२४॥ वीरों के भुज, उरु, कर, कटि, कर्ण और पैर आदि शरीर के अवयव छिन्न-भिन्न हो-होकर गिर रहे थे ॥२५॥ किरीट, कुण्डल आदि से भूषित मस्तकों, ध्वज, बाण, तलवार, बख्तर, टूटे हुए भूषण तथा हाथियों के सूँड आदि से सम्पूर्ण युद्ध भूमि ढक गई ॥२६॥ भूषण और हथियारों से युक्त वीरों की भुजायें यों ही कट-कटकर वहाँ गिर रही थीं और वह भूमि शिरों से मधुमक्खियों के छत्तों के समान व्याप्त हो गई थी ॥२७॥ उस देवासुरों के महान् भीषण युद्ध में योधागण कटकर गिरे हुए मस्तकों को आँखों से देखकर आयुध उठाते हुए धावमान हो रहे थे ॥२८॥

वल्गंतोऽतितरां वीरा युयुधुश्च परस्परम् ।
शस्त्रास्त्रैर्विधैस्तत्र महाबलपराक्रमाः ॥२९
केचित्स्वर्णमुखैर्बाणैर्विनिहत्य भटान्मृधे ।
व्यनदन् वीरसन्नादं सतोया इव तोयदाः ॥३०
सवतः शरकूटेन वीरः सरथसारथिम् ।
वीरं संछादयामास प्रावृटसूर्यमिवांबुदः ॥३१
अन्योन्यमभिसंसृत्य युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ।
आह्वयंतो विशताऽग्रे क्षिपतो मर्मभिर्मिथः ॥३२
सर्वतो वीरसंघाश्च नानाबाहुध्वजायुधाः ।
व्यदृश्यत महासंख्ये कुर्वंतः सिंहसंरवम् ॥३३
महारवान्स्वशंखांश्च विदध्मुर्वै पृथक् पृथक् ।
वल्गनं चक्रिरे तत्र महावीराः प्रहर्षिताः ॥३४

एवं चिरतरं कालं देवदानवयोर्महत् ।
बभूव युद्धं विकटं करालं वीरहर्षदम् ॥३५
महाप्रभोश्च लीलेयं शंकरस्य परात्मनः ।
यया संमोहितं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३६

महा पराक्रम वाले वीर अनेक तरह के अस्त्र-शस्त्र उठाकर सिंहनाद करते हुए घोर युद्ध करने लगे ॥२९॥ उनमें कुछ वीर सुवर्ण पंख वाले बाणों से योधाओं का संहार करते हुए महामेघ के तुल्य गम्भीर गर्जनकर रहे थे ॥३०॥ तब तरफ से आने वाले बाणों के समूह से वीर, रथ और सारथी इस प्रकार ढक गये मानो मेघों की घटा ने आकर सूर्य को ढक लिया हो ॥३१॥ द्वन्द्व-युद्ध करने वाले भी एक दूसरे के मर्म स्थलों का भेदन करते हुए प्रहार पर प्रहार कर रहे थे ॥३२॥ सभी ओर से वीरों के समूह नाना भाँति के आयुध हाथों में लेकर सिंह के समान घोर नाद करते हुए युद्ध स्थल में दिखलाई दे रहे थे ॥३३॥ वे बड़े-बड़े शंखों को बजा रहे थे, जिनकी महाध्वनि से आकाश व्याप्त हो रहा था। ऐसे अनेक शंख पृथक् पृथक् बजाते हुए वीर प्रसन्नता के साथ ताड़न और वेधन करने में तत्पर थे।३४। इस रीति से बहुत समय पर्यन्त देव-दानवों का वह भीषण वीरों को प्रसन्नता देने वाला महाघोर युद्ध हुआ ॥३५॥ यह सब परमेश शंकर की ललित लीला है जिसने देव, दानव, मनुष्य सभी को मोहित कर दिया है ॥३६॥

॥ शंखचूड का कार्तिकेय आदि से युद्ध ॥

तदा देवगणाः सर्वे दानवैश्च पराजिताः ।
दुद्रुवुर्भयभीताश्च शस्त्रास्त्रक्षतविग्रहाः ॥१॥
ते परावृत्य विश्वेशं शंकरं शरणं ययुः ।
त्राहि त्राहीति सर्वेशेत्यूचुर्विह्वलया गिरा ॥२
दृष्ट्वा पराजयं तेषां देवादीनां स शंकरः ।
सभयं वचनं श्रुत्वा कोपमुच्चैश्चकार ह ॥३
निरीक्ष्य स कृपादृष्ट्या देवेभ्यश्चाभयं ददौ ।

बलं च स्वगणानां वै वर्द्धयामास तेजसा ।।४
शिवाज्ञप्तस्तदा स्कन्दो दानवानां गणैः सह ।
युयुधे निर्भयः संख्ये महावीरो हरात्मजः ।।५
कृत्वा क्रोध वीरशब्द देवो यस्तारकांतकः ।
अक्षौहिणीनां शतकं समरे स जघान ह ।।६
रुधिर पातयामास काली कमललोचना ।
तेषां शिरांसि सछिद्य बभक्ष सहसा च सा ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय सभी देवगण दानवों से पराजय प्राप्त कर उनके शस्त्रास्त्रों से क्षत विक्षत होते हुये भागने लगे ।।१।। देवगण युद्ध स्थल से पलायित होकर भगवान शंकर की शरण में पहुँचे और विह्वल वाणी के द्वारा "भगवान् ! हमारी रक्षा कीजिए"—इस तरह पुकार कर कहने लगे ।।२।। उस समय महेश्वर को देव वृन्द की हार देखकर और उनके भय से परिपूर्ण वचन सुनकर महान् क्रोध उत्पन्न हुआ ।।३।। शंकर ने कृपा की दृष्टि से देवों को देखकर उनका भय दूर कर दिया और अपनी तेजोमयी भक्ति के द्वारा अपने गणों में विशेष बल-पराक्रम की वृद्धि कर दी ।।४।। इसके पश्चात् स्कन्द शिव की आज्ञा प्राप्त कर महावीरता का प्रकाश भरते हुए निर्भय होकर दानवों के साथ युद्ध करने के लिये चल दिये ।।५।। उस समय तारक के संहार करने वाले महान् वीर स्कन्द महा गर्जन का घोर शब्द सुनाते हुए दानवों की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का संहार करने लगे ।।६।। इधर महाकाली देवी समर भूमि में दानवों का नाश करती हुई उनके गर्म रुधिर का पान करने में तत्पर हो गई और शत्रु के शिरों को काट कर उनका भक्षण करने लगी ।।७।।

पपौ रक्तानि तेषां च दानवानां समंततः ।
युद्धं चकार विविधं सुरदानवभीषणम् ।।८
शतलक्षं गजेन्द्राणां शतलक्षं नृणां तथा ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया ।।९
कबंधानां सहस्रं च संननर्त रणे बहु ।

महान् कोलाहलो जातः क्लीवानां च भयंकरः ॥१०
पुनः स्कन्दः प्रकुप्योच्चैः शरवर्षां चकार ह ।
पातयामास क्षयतः कोटिशोऽसुरनायकान् ॥११
दानवाः शरजालेन स्कन्दस्य क्षतविग्रहाः ।
भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे शेषा मरणतस्तदा ॥१२
वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दंडश्चापि विकंपनः ।
स्कन्देन युयुधुः सार्द्धं तेन सर्वे क्रमेण च ॥१३
महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी ।
बभूवुस्ते क्षतांगाश्च स्कन्दशक्तिप्रपीडिताः ॥१४

उस समय देव दानवों का ऐसा महा भयंकर युद्ध हुआ कि सभी तरफ से असुर दल के रुधिर का पान किया जाने लगा ॥८॥ सौ लाख महान् गजों और एक शत लक्ष वीर दानवों को हाथ से उठाकर महा काली लीला से ही अपने मुख में डालने लगी ॥९॥ सैंकड़ों धड़ जिनके मस्तकों का छेदन हो गया था उस रण-भूमि में नाच रहे थे । उस समय भीरु मनुष्यों के हृदय में महा भय की उत्पत्ति करने वाला महान् कोलाहल सब ओर हो रहा था ॥१०॥ ऐसा होते हुए भी कुमार स्कन्द ने क्रोध के साथ बाणों की महा-वृष्टि के द्वारा करोड़ों की संख्या में दानवों का संहार कर दिया ॥११॥ जो स्कन्द की बाण वर्षा से बच गये थे वे क्षत-विक्षत शरीर वाले होकर समर भूमि से भागने लगे ॥१२॥ स्कन्द के साथ क्रम से विप्रचित्ति, वृषपर्वा, दण्ड और विकम्पन ने युद्ध करना आरम्भ किया ॥१३॥ उधर महामारी संग्राम से पराङ् मुख न होते हुए युद्ध कर रही थी । स्कन्द की शक्ति से दैत्य क्षत-विक्षत हो रहे थे ।१४।

महामारीस्कन्दयोश्च विजयोऽभूतदा मुने ।
देदुदुंदुभयः स्वर्गे पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥१५
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं तमद्भुतम् ।
दानवानां क्षयकरं यथा प्रकृतिकल्पकम् ॥१६
महामारीकृतं तच्चोपद्रवं क्षयहेतुकम् ।
चुकोपातीव सहसा सनद्धोऽभूत्स्त्रयं तदा ॥१७

वरंविमानमारुह्य नानाशस्त्रास्त्रसंयुतम् ।
अभयं सर्ववीराणां नानारत्नपरिच्छदम् ॥१८
महावीरैः शंखचूडो जगाम रथमध्यतः ।
धनुर्विकृष्य कर्णान्तं चकार शरवर्षणम् ॥१९
तस्य सा शरबृष्टिश्च दुर्निवार्य्या भयंकरी ।
महाघोरांधकारश्च वधस्थाने बभूव ह ॥२०
देवः प्रदुद्रुवुः सर्वे येऽन्ये नन्दीश्वरादयः ।
एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्द्धनि ॥२१

हे मुनि श्रेष्ठ ! इस युद्ध में स्कन्द और भगवती की जीत हुई । इस विजय को देखकर स्वर्ग में दुन्दुभि बजने लगी और आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई ॥१५॥ कुमार स्कन्द ने बहुत ही भीषण प्रकृति-कल्प के समान असुरों का नाश करने वाला युद्ध किया था और उस क्षय का हेतु महा-मारी ने प्रस्तुत किया था । यह देखकर दानवों के राजा को बड़ा भारी क्रोध हुआ और फिर वह स्वयं ही युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥१६-१७॥ दानवेन्द्र उस समय एक ऐसे विमान पर आरूढ़ हुआ जो सबको अभय देने वाला था और जिसमें नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र रक्खे हुए थे ॥१८॥ दानवराज शंखचूड बड़े-बड़े योधाओं को साथ में लेकर रथ में बैठकर युद्ध क्षेत्र में आ गया और कान तक धनुष की प्रत्यञ्चा को तान कर बाणों की वृष्टि करने लगा ॥१९॥ उस असुरेन्द्र की घोर बाण वृष्टि निवारण करने के अयोग्य हो रही थी और इससे युद्ध भूमि में महान् अन्धकार छा गया ॥२०॥ नन्दीश्वर आदि को साथ लेकर सभी देवगण घबराते हुए वहाँ से भाग खड़े हुए और उस समय वहाँ अकेले कुमार कार्त्तिकेय ही रह गये थे ॥२१॥

पर्वतानां च सर्पाणां नागानां शाखिनां तथा ।
राजा चकार बृष्टिं च दुर्निवार्यां भयंकरीम् ॥२२
तद्वृष्ट्या प्रहतः स्कन्दो बभूव शिवनन्दनः ।
नीहारेण च सांद्रेण संबृतौ भास्करौ यथा ॥२३
नानाविधां स्वमायां च चकार मयदर्शिताम् ।

तां नाविदन् सुराः केऽपि गणाश्च मुनिसत्तम ॥२४
तदैव शंखचूडश्च महामायी महाबलः ।
शरेणैकेन दिव्येन धनुश्चिच्छेद तस्य वै ॥२५
बभंज तद्रथं दि यं चिच्छेद रथपीडकान् ।
मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेन चकार सा ॥२६
शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षसि घातिनीम् ।
मूर्च्छामवाप सहसा तत्प्रहारेण स क्षणम् ॥२७
पुनश्चा चेतनां प्राप्य कार्तिकः परवीरहा ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणमारुरोह स्ववाहनम् ॥२८
स्मृत्वा पादौ महेशस्य साम्बिकस्य च षण्मुखः ।
शस्त्रास्त्राणि गृहीत्वैव चकार रणमुल्बणम् ॥२९

शंखचूड ने पर्वत, सर्प, नाग, और वृक्षों की भी दुर्निवारणीय भयानक वृष्टि देव सेना पर की ॥२२॥ ऐसी भयंकर वर्षा से शिव पुत्र कार्त्तिकेय परम व्यथित एवं प्रताड़ित हुये। कुहरे के समय में भास्कर देव की भाँति उस समय दोनों महावीर दिखाई दे रहे थे ॥२३॥ इस युद्ध में दानवेन्द्र ने मय दानव की बहुत-सी माया प्रकट की जिसकी देवता और शिव के गण कोई भी नहीं जान सके ॥२४॥ उस समय महान् बलवान् अत्यन्त मायाधारी शंखचूड ने अपने एक बाण से स्कन्द के धनुष का छेदन कर दिया ॥२५॥ दानवेन्द्र ने कुमार के रथ को छिन्न-भिन्न करके वाहन मयूर को भी अपने दिव्य बाण से जर्जरित कर दिया ॥२६॥ असुरराज ने सूर्य तुल्य एक घातक शक्ति के द्वारा स्कन्द के वक्ष-स्थल में ऐसा भयानक प्रहार किया कि क्षण मात्र के लिये वे मूर्छित होगये ॥२७॥ थोड़े ही समय के पश्चात् चेतना प्राप्त कर स्कन्द अपने महारत्न निर्मित वाहन पर आरूढ़ होगये और उस समय कुमार ने अपने माता के सहित पिता श्रीशिव का ध्यान करते हुये शस्त्रास्त्र ग्रहण कर महाघोर संग्राम किया ॥२८-२९॥

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा ।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः ॥३०

वह्नि निवारयामास पार्जन्येन शरेण ह ।
रथं धनुश्च चिच्छेद शंखचूडस्य लीलया ।।३१
सन्नाहं सर्ववाहांश्च किरीटं मुकुटोज्वलम् ।
वीरशब्दं चकारासौ जगर्ज च पुनः पुनः ।।३२
चिक्षेप शक्ति सूर्याभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि ।
तत्प्रहारेण संप्राप मूर्च्छां दीर्घतपेन च ।।३३
मुहूर्तमात्रं तत्क्लेशं विनीय स महावलः ।
चेतनां प्राप्य चोत्तस्थौ जगर्ज हरिवर्चसः ।।३४
शक्त्या जघान तं चापि कार्तिकेयं महाबलम् ।
स पपात महीपृष्ठेऽमोघां कुर्वन् विधिप्रदाम् ।।३५

दानवेन्द्र के चलाये हुए सर्प वृक्ष, पर्वत और प्रस्तर आदि का अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा छेदन कर दिया ।।३०।। कुमार ने मेघास्त्र का प्रयोग कर असुरेन्द्र द्वारा प्रसारित अग्नि को शान्त शीतल कर दिया तथा लीला ही से शंखचूड के रथ और धनुष का छेदन कर दिया ।।३१।। कार्त्तिकेय ने असुरराज के कवच, वाहन और निर्मल किरीट कुण्डल सबको काट कर गर्जना के साथ बार-बार वीरता भरी ध्वनि की ।।३२।। कुमार ने सूर्य के समान जाज्वल्यमान एक शक्ति के द्वारा शंखचूड की छाती में ऐसा प्रबल प्रहार किया कि वह बहुत समय तक बेहोश हो गया ।।३३।। महा बलवान् वह दैत्यराज थोड़ी देर में ही क्लेश का निवारण कर सचेत होगया और तुरन्त फिर उठकर जोर से गर्जने लगा ।।३४।। उसने स्वामी कार्त्तिकेय पर पुनः शक्ति का प्रहार किया तो कुमार ब्रह्माजी के वचन को सफल करने के लिए भूमि पर गिर गये ।।३५।।

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ ।
ज्ञानेन तं शिवश्चापि जीवयामास लीलया ।।३६
ददौ बलमनंतं च समुत्तस्थो प्रतापवान् ।
गमनाय मतिं चक्रे पुनस्तत्र शिवात्मजः ।।३७
एतस्मिन्नंतरे वीरो वीरभद्रो महाबलः ।
शंखचूडेन युयुधे समरे बलशालिना ।।३८

ववर्ष समरेऽस्त्राणि यानि यानि च दानवः ।
चिच्छेद लीलया वीरस्तानि तानि निजैः शरैः ।।३९
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे दानवेश्वरः ।
तानि चिच्छेद तं बाणैर्वीरभद्रः प्रतापवान् ।।४०
अथातीव चुकोपोच्चैः शंखचूडः प्रतापवान् ।
शक्त्या जघानोरसि तं चकंपे पपात कौ ।।४१
क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ गणेश्वरः ।
जग्राह च धनुर्भूयो वीरभद्रो गणाग्रणीः ।।४२
एतस्मिन्नंतरे काली जगाम समरं पुनः ।
भक्षितुं दानवान् स्वांश्च रक्षितुं कार्तिकेच्छयः ।।४३
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः ।
सर्वे देवाश्च गधर्वा यक्षा रक्षांसि पन्नगाः ।।४४
वाद्यभांडाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः ।
पुनः समुद्यताश्चासन् वीरा उभयतोऽखिलाः ।।४५

उस समय महाकाली ने उन्हें गोद में उठाकर शिव के समीप में पहुँचा दिया और भगवान् शंकर ने अपने ज्ञान के बल से उनको लीला से ही जीवित कर दिया ।।३६।। शिव ने कार्त्तिकेय को असीम बल का भी प्रदान किया इससे वे उठकर पुनः युद्ध-भूमि में जाने की इच्छा करने लगे ।।३७।। इस बीच में गणेश्वर वीरभद्र ने दैत्यराज से घोर युद्ध किया ।।३८।। उस समय युद्ध करते हुये दानवेश्वर ने जिन अस्त्रों की वर्षा की वीरभद्र ने उन सबको आसानी से ही काट गिराया ।।३९।। तब शंखचूड को महान् क्रोध आया और उसने एक ऐसी शक्ति का प्रयोग किया कि वीरभद्र भी पृथिवी पर गिर गये। गणेश्वर ने चेतनायुक्त होकर हाथमें धनुष उठा लिया ।४०-४२। महाकाली पुनः आकर कार्त्तिकेयकी रक्षा और दानवोंके भक्षणकी इच्छा प्रकट करने लगी ।४३। उसके साथ नन्दीश्वर आदि महावीर योधा,देव,गन्धर्व,यक्ष,राक्षस,और पन्नग थे, जोकि विविध वाद्य तथा मधु के सैकड़ों पात्र लिये हुये थे । फिर क्या था दोनों ही ओर के बलवान् योद्धा युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हो गये ।।४४-४५।।

।। काली और शंखचूड़ में दिव्य अस्त्रों से युद्ध ।।

सा चा गत्वा हि संग्राम सिंहनादं चकार ह ।
देव्याश्च तेन नादेन मूर्च्छामायुश्च दानवाः ।।१
अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः ।
तता पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्द्धनि ।।२
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ।
अन्याश्च देव्यस्तत्राजौ ननृतुर्मधु संपपुः ।।३
महान् कोलाहलो जातो गणदेवदले तदा ।
जहृषुर्बहुः गर्जंतः सर्वे सुरगणादयः ।।४
दृष्ट्वा कालीं शंखचूडः शीघ्रमाजौ समापयौ ।
दानवाश्च भयं प्राप्ता गजा तेभ्योऽभयं ददौ ।।५
काली चिक्षेपवह्नि च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
राजा जघात त शीघ्रं वैष्णवांकितलीलया ।।६
नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप तदुपर्यरम् ।
वृद्धिं जगाम तच्छस्त्रं दृष्ट्वा वामं च दानवम् ।।७

सनत्कुमार जी ने कहा—उस समय भगवती काली ने युद्ध भूमि में पहुंचते ही बड़े जोर का सिंहनाद किया जिसे सुनते ही समस्त दानवों को मूर्च्छा होगई ।।१।। देवी ने इस तरह कितनी ही बार भयंकर सिंहनाद किया और वह बार-बार मधु का पान करती हुई समर-स्थल में नृत्य करने लगी ।।२।। काली की भयोत्पादक बड़ी दाढ़ें थीं, उनसे सबको डराती हुई दण्ड हाथ में ग्रहण करके मदिरा पान कर रही थी और उसके साथ वाली अन्य अनेक देवियाँ भी पान तथा नर्तन करती थीं ।।३।। काली के वहाँ आजाने पर दोनों दलों में महान् कोलाहल मच गया तथा देवगण उस ध्वनि को सुनकर हर्षोल्लास से भर गये ।।४।। महाकाली को युद्ध के मैदान आई देखकर शीघ्र शंखचूड वहाँ आगया और जो दानव भयभीत होगये थे उन्हें अभय देने लगा ।।५।। काली देवी ने प्रलयकालीन उद्दीप्त अग्नि के तुल्य अग्नि-शक्ति के द्वारा प्रहार किया किन्तु दानवेश्वर ने उसे वैष्णवास्त्र से तुरन्त ही शान्त कर दिया ।।६।।

इसके पश्चात् भगवती ने असुर पर नारायणास्त्र का प्रयोग किया जो कि दानव को देखकर बढ़ने लगा ॥७॥

तं दृष्ट्वा शंखचूडश्च प्रलयाग्निशिखोपमम् ।
पपात दंडवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ॥८
निवृत्ति प्राप तच्छस्त्रं दृष्ट्वा नम्रं च दानवम् ।
ब्रह्मास्त्रमथ सा देवी चिक्षेप मंत्रपूर्वकम् ॥९
तं दृष्ट्वा प्रज्वलंतं च प्रणम्य भुवि संस्थितः ।
ब्रह्मास्त्रेण दानवेन्द्रो विनिवारं चकार ह ॥१०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रो धनुराकृष्य रंहसा ।
चिक्षेप दिव्यान्यस्त्राणि देव्यै वै मंत्रपूर्वकम् ॥११
आहारं समरे चक्रे प्रसार्य मुखमायतम् ।
जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥१२
काल्यै चिक्षेप शक्तिं स शतयोजनमायतम् ।
देवी दिव्यास्त्रजालेन शतखंडं चकार सा ॥१३
स च वैष्णवमस्त्रं च चिक्षेप चंडिकोपरि ।
माहेश्वरेण काली च विनिवारं चकार सा ॥१४

शंखचूड इस अस्त्र को प्रलयकाल की अग्नि के समान देखकर भूमि पर गिर गया और उसे प्रणाम करने लगा ॥८॥ वह अस्त्रराज दानव की ऐसी विनम्रता देखते ही निवृत्त हो गया। फिर देवी ने मन्त्रपूर्वक सविधि ब्रह्मास्त्र को छोड़ा ॥९॥ इस अस्त्र को परम प्रज्वलित रूप में देखकर भूमि गत हो दानवेन्द्र ने उसे भी प्रणाम किया और उसके प्रहार से बच गया ॥१०॥ इसके पश्चात् दानवेन्द्र क्रोधपूर्वक बहुत ही वेग के साथ धनुष लेकर मन्त्रों के साथ देवी पर बाणों की घोर वृष्टि करने लगा ॥११॥ उस समय देवी ने अपना मुख फैला दिया और उसने प्रयोग में लाये गये सभी अस्त्रों का भक्षण कर लिया और अट्टहास करती गर्जना करने लगी। इससे दानव अत्यन्त भय कातर हो उठे ॥१२॥ इसके अनन्तर दानवराज ने सौ योजन तक प्रभाव दिखाने वाली शक्ति

का प्रयोग काली पर किया तो देवी ने अपने परम दिव्य अस्त्रों से उस शक्ति को काटकर खण्ड खण्ड कर दिया ।।१३।। इसके बाद शंखचूड़ ने वैष्णवास्त्र छोड़ा जिसे देवी ने माहेश्वरास्त्र से हटा दिया ।।१४।।

एव चिरतरं युद्धमन्योन्यं संबभूव ह ।
प्रेक्षका अभवन् सर्वे देवाश्च दानवा अपि ।।१५
अथ क्रुद्धा महादेवी कालसमा रणे ।
जग्राह मन्त्रपूतं च शरं पाशुपतं रुषा ।।१६
क्षेपात्पूर्वं तन्निषेद्धुं वाग्बभूवाशरीरिणी ।
न क्षिपास्त्रमिमं देवि शंखचूडाय वै रुषा ।।१७
मृत्युः पाशुपतान्नास्त्यमोघादपि चंडिके ।
शंखचूडस्य वीरस्योपायमन्यं विचारय । १८
इत्याकर्ण्य भद्रकाली न चिक्षेप तदस्त्रकम् ।
शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा ।।१९
अत्तुं जगाम वेगेन शंखचूडं भयंकरी ।
दिव्यास्त्रेण च रौद्रेण वारयामास दानवः ।।२०
अथ क्रुद्धो दानवेन्द्रः खड्गं चिक्षेप सत्वरम् ।
ग्रीष्मसूर्योपमं तीक्ष्णधारमत्यंतभीकरम् ।।२१
सा काली तं समालोक्यायांतं प्रज्वलितं रुषा ।
प्रसार्य मुखमाहारं चक्रे तस्य च पश्यतः ।।२२

इस तरह इन दोनों का अधिक काल तक युद्ध चलता रहा, सब देव और दानव पारस्परिक युद्ध देखने में तत्पर होगये ।।१५।। उस समय भगवती को काल के समान महान् क्रोध हुआ और उसने पाशुपतास्त्र को लेकर मन्त्रों द्वारा पवित्र किया ।।१६।। वह अस्त्र का जैसे ही प्रयोग करना चाहती थी कि वहाँ आकाशवाणी हुई—हे देवि ! शखचूड़ पर इसका निक्षेप मत करो । यद्यपि यह महास्त्र निक्षेप ही अमोघ है किन्तु हे चण्डि के ! इसके द्वारा इसकी मृत्यु नहीं होगी । इसलिए इसके वध के लिये कोई दूसरा ही उपाय करो ।।१७-१८।। इस आकाशवाणी को सुन कर उस अस्त्र का प्रयोग नहीं किया और लीला के साथ वैसे ही सौ लाख

दानवों का भक्षण कर डाला ॥१६॥ इसके बाद में जब काली शंखचूड़ को भक्षण करने को भागी तो उसने इसके इस भयंकर वेग को दिव्य रौद्रास्त्र के द्वारा रोका ॥२०॥ तब दानवेश्वर ने ग्रीष्मकाल के सूर्य के सदृश्य परम तीक्ष्ण धार वाले खग का देवी पर क्रोध के साथ प्रहार किया ॥२१॥ काली ने उस प्रज्वलित खंग को अपना मुख फैलाकर भक्षण कर डाला ॥२२॥

दिव्यान्यस्त्राणि चान्यानि चिच्छेद दानवेश्वरः ।
प्राप्तानि पूर्वतश्चक्रे शतखंडानि तानि च ॥२३
पुनरस्तु महादेवी वेगतस्तं जगाह ह ।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमानंतर्धानं चकार सः ॥२४
वेगेन मुष्टिना काली तमदृष्ट्वा च दानवम् ।
बभंज चरथं तस्य जघान किल सारथिम् ॥२५
अथागत्य द्रुतं मायी चक्रं चिक्षेप वेगतः ।
भद्रकाल्यै शंखचूडः प्रलयाग्निशिखोपमम् ॥२६
सा देवी तं तदा चक्रं वामहस्तेव लीलया ।
जग्राह स्वमुखेनैवाहार चक्रे रुषा द्रुतम् ॥२७
मुष्ट्या जघानं तं देवी महाकोपेन वेगतः ।
बभ्राम दानवेन्द्रोऽपि क्षणं मूर्च्छामवाप सः ॥२८
क्षणेन चेतनां प्राप्त स चोत्तस्थौ प्रतापवान् ।
न चक्रे बाहुयुद्धं च मातृबुद्धया तया सह ॥२९

इस तरह दानवराज ने अनेक उत्तम से उत्तम अस्त्रों का काली पर प्रयोग किया किन्तु उसने सबको काटकर खण्ड-खण्ड कर दिया ॥२३॥ जिस समय भगवती शंखचूड़ को ही भक्षण कर डालने के लिये वेग से दौड़ी तो सर्व सिद्धों का स्वामी दानवेश्वर अन्तर्धान हो गया ॥२४॥ जब काली ने शंखचूड़ को वहाँ कहीं नहीं देखा तो उसने बडे जोर के साथ मुष्टि मारकर उसका रथ और सारथी का नाश कर दिया ॥२५॥ इसके बाद फिर उस माया से भरे हुए दानवेश्वर ने वहाँ शीघ्र ही आकर देवी पर चक्र का आघात किया जो कि प्रलय की अग्नि के तुल्य भयंकर था

॥२६॥ भगवती ने उसे भी बड़ी आसानी से बाँये हाथ से पकड़कर क्रोध पूर्वक खा लिया ॥२७॥ इसके अनन्तर बहुत कोप और अत्यन्त वेग से काली ने उस शंखचूड़ पर मुष्टि का प्रहार किया जिससे वह घूम गया और क्षणभर को उसे मूर्च्छा हो गई ॥२८॥ थोड़ी ही देर के बाद मूर्च्छा से उठ बैठा किन्तु चण्डिका को मातृ-भाव से देखकर उससे उसने बाहु युद्ध करना उचित नहीं समझा ॥२९॥

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः ।
उर्ध्वं च प्रापयामास महाकोपेन वेगतः ॥३०
उत्पपात च वेगेन शंखचूडः प्रतापवान् ।
निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम् ॥३१
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानं सुमनोहरम् ।
आरुरोह स हृष्टात्मा न भ्रान्तोऽपि महारणे ॥३२
दानवानां हि क्षतजं सा पपौ कालिका क्षुधा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी ॥३३
लक्षं च दानवेन्द्राणमशिष्टं रणेऽधुना ।
उद्धतं गुञ्जतां सार्द्धं ततस्त्वं भुंक्ष्व चेश्वरि ॥३४
संग्रामे दानवेन्द्रं च हंतुं न कुरु मानसम् ।
अवध्योऽयं शंखचूडस्तव देवीति निश्चयम् ॥३५
तच्छ्रुत्वा वचनं देवी निःसृतं व्योममंडलाद् ।
दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥
भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमाययौ ।
उवाच रणवृत्तांत प्रौर्वापर्येण सक्रमम् ॥३७

इसके पश्चात् भगवती ने उसे पकड़कर अनेक बार चारों ओर घुमाते हुए क्रोध पूर्वक बड़े वेग से ऊपर की ओर फेंक दिया ॥३०॥ प्रताप वाला शंखचूड़ वेगपूर्वक ऊपर की ओर कूद गया और पुनः नीचे आकर भद्रकाली को प्रणाम करते हुए युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गया ॥३१॥ उत्तम रत्न रचित विमान पर आरूढ़ होकर बिना किसी भ्रान्ति के परम प्रसन्नता से संग्राम के लिए तैयार हो गया ॥३२॥ इस ओर काली देवी

दानवों के रक्त का पान कर रही थी उस समय पुनः आकाश से वाणी सुनाई दी—हे चण्डिके ! अभी समर भूमि में एक लाख दानवों का रक्त शेष रह गया है । ये ही बड़े उद्धत भी हैं । अतः हे ईश्वरि ! इनको तुम शीघ्रातिशीघ्र भक्षण कर डालो ॥३३-३४॥ हे देवि ! इस संग्राम में शंखचूड़ के वध करने का विचार ही त्याग दो । यह तुम्हारे द्वारा वध नहीं किये जाने वाला है–इसे निश्चय रूपसे समझ लेना चाहिए ॥३५॥ ऐसा वचन सुनकर देवी ने अन्तरिक्ष के मण्डल से बहुत से असुरों का रक्त तथा मांस निकल कर आते हुए देखा ॥३६॥ भगवती ने सानन्द उसका भक्षण एवं पान किया और भगवान् शंकर के पास उपस्थित होकर समस्त साद्यन्त युद्ध का समाचार उन्हें सुना दिया ॥३७॥

॥ शिव और शंखचूड़ का तुमुल संग्राम ॥

श्रुत्वा काल्युक्तमीशानो किं चकार किमुक्तवान् ।
तत्त्व वद महाप्राज्ञ परं कौतूहल मम ॥१
काल्युक्तं वचनं श्रुत्वा शंकरः परमेश्वरः ।
महालीलाकारः शंभुर्जहासाश्वासयंश्च ताम् ॥२
व्योमवाणी समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः ।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह शंकरः ॥३
महावृषभमारूढो वीरभद्रादिसंयुतः ।
भैरवैः क्षेत्रपालैश्च स्वसमानैः समन्वितः ॥४
रणं प्राप्तो महेशश्च वीररूपं विधाय च ।
विरराजाधिकं तत्र रुद्रो मूर्त इवांतकः ॥५
शंखचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य सः ।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दडवद्भुवि ॥६
तं प्रणम्य तु योगेन विमानमारुरोह सः ।
तूर्णं चकार तन्नाहं धनुजग्राह सेषुकम् ॥७

व्यासजी ने कहा–हे महाप्राज्ञ ! हे सनत्कुमार ! भद्रकाली के द्वारा संग्राम का वृत्तान्त सुनकर फिर भगवान शंकर ने क्या कहा तथा क्या

किया- यह बतलाइये। मुझे मन में इसके जानने का महान् कौतूहल हो रहा है ॥१॥ सनत्कुमार ने कहा—शंकरजी काली की कही हुई सारी कथा सुनकर हँसने लगे और उसे भली-भाँति लीलापूर्बक समझाया ॥२॥ शिव, तत्वों के ज्ञान के महापण्डित हैं। उन्होंने आकाशवाणी की बातें सुनते ही अपने गणों के सहित स्वयं युद्ध भूमि में जाने की प्रवृत्ति प्रकट की ॥३॥ शिव ने वृषभ पर सवारी की और वीरभद्र आदि गणों से संयुक्त हुए तथा अपने ही तुल्य भैरव और क्षेत्रपाल को साथमें लेलिया। अपना महान् वीर के समान स्वरूप बना कर युद्धस्थल में पहुँच गये। उस समय भगवान् परम शान्त स्वरूप वाले शिव काल के सदृश भयंकर प्रतीत होकर विराजमान थे ॥४-५॥ शिवजी को वहाँ आये हुए देखते ही शंखचूड़ विमान से नीचे उतर पड़ा और उससे परम श्रद्धा भक्ति की भावना से चरणों में मस्तक रखकर शिव को दण्डवत्प्रणाम किया ॥६॥ शंकर को प्रणाम करने के अनन्तर वह योग-मार्ग से विमान पर चढ़ गया और कवच धारण कर उसने धनुष-बाण हाथ में ले लिया ॥७॥

शिवदानवयोर्युद्धं शतमब्दं बभूव ह।
बाणवर्षमिवाग्रं तद्वर्षतोर्मोघयोस्तदा ॥८
शंखचूडो महावीरा शरांश्चिक्षेप दारुणान्।
चिच्छेद शंकरस्तान्वै लीलया स्वशरोत्करैः ॥९
तदंगेषु च शस्त्रौघैस्ताडयामास कोपतः।
महारुद्रो विरूपाक्षो दुष्टदण्डः सतां गति ॥१०
दानवो निशितं खड्गं चर्म चादाय वेगवान्।
वृषं जघान शिरसि शिवस्य वरवाहनम् ॥११
ताडिते वाहने रुद्रस्तं क्षुरप्रेण लीलया।
खड्गं विच्छेद तस्याशु चर्म चापि महोज्ज्वलम् ॥१२
छिन्नेऽसौ चर्माणि तदा शक्तिं चिक्षेव सोऽसुरः।
द्विधा चक्रे स्वबाणेन हरस्तां समुखागताम् ॥१३
कोपाध्मातः शंखचूडः चक्रं चिक्षेप दानवः।
मुष्टिपातेन तच्चाप्यकूर्णयत्सहसा हरः ॥१४

सौ वर्ष तक निरन्तर शिव और शंखचूड़ का संग्राम चलता रहा और बराबर मेघों की अविरल धारा के सदृश बाणों की वृष्टि होती रही । ८ । यद्यपि यज्ञदानव एवं श्रेष्ठ वीर शंखचूड़ ने बहुत दारुण बाणों की वर्षा शिव पर की किन्तु शंकर ने लीला ही में अपने बाणों द्वारा सभी का खण्डन कर दिया । ६ । दुष्टों को दण्ड तथा सज्जनों को उद्धार देने वाले विरूपाक्ष शंकर ने बड़े ही कोप से दानव के अंगों पर शस्त्रों का प्रहार किया । १० । उसी समय दानवेन्द्र ने बड़ी तेजी से एक तेज धार वाले खंग से शंकर के वाहन के शिर पर आघात किया ।११। दानव के प्रहार करते ही शिव ने तीक्ष्ण नोंक वाले वाण से उसकी ढाल तथा तलवार का छेदन कर दिया । १२ । तलवार के छिन्न होने के बाद उसने शक्ति से प्रहार करना आरम्भ किया तो महादेव ने वाण से उसके भी खण्ड-खण्ड कर दिये । १३ । दानव के चक्र को मुष्टि के प्रहार से नष्ट भ्रष्ट कर उससे प्रहार के होने को निरर्थक कर दिया ॥१४॥

गदामाविध्य तरसा सचिक्षेप हरं प्रति ।
शंभुना साऽपिसहसा भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५
तता परशुमादाय हस्तेन दानवेश्वरः ।
धावति स्म हरं वेगाच्छंखचुडः क्रुधाकुलः ॥१६
समाहृत्य स्वबाणैर्धैरपतयत शंकरः ।
द्रुतं परशुहस्तं तं भूतले लीलयाऽसुरम् ॥१७
ततः क्षणेन संप्राप्य संज्ञामारुह्य सद्रथम् ।
धृतदिव्यायुधशरो बभौ व्याप्याखिलं नभः ॥१८
आयांतं त निरीक्ष्यैव डमरुध्वनिमादरात् ।
चकार ज्यारवं चापि धनुषो दुःसहं हरः ॥१९
पूरयामास ककुभः शृङ्गनादेन च प्रभुः ।
स्वयं जगर्ज गिरिशस्त्रासयन्नसुरांस्तदा ॥२०
त्याजितेभमहागर्वैर्महानादैर्वृषेश्वरः ।
पूरयामास सहसा खं गां वसुदिशस्तथा ॥२१

शखचूड़ ने प्रहार करने को अपनी गदा जब उठाई तो उसको चलाते

ही शम्भु ने बाण द्वारा तोड़-फोड़कर चूर्ण कर दिया। १५। इन सब आयुधों के नष्ट हो जाने पर वह परशु लेकर शिव पर प्रहार करने को भागा तो महेश्वरने उसके हाथ सहित काट कर भूमि में निपतित कर दिया । १६-१७। थोड़े ही समय के पश्चात् वह दैत्य सचेतन होकर रथारूढ़ हुआ और दिव्यास्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो आकाश में व्यापक रूप से संस्थित हो गया। १८। इस रीति से पुनः आते हुए दानव को देखकर भगवान् शम्भु ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा और डमरू का भीषण शब्द किया। १९।शंकर के डमरू की ध्वनि से उस समय समस्त दिशा-विदिशायें भर गईं और दैत्यों को भयपूर्ण कर शिव गर्जना करने लगे। २०। शिव के गर्वपूर्ण इस महानाद से तथा वृषेन्द्र की उच्च ध्वनि से समस्त भूमण्डल और आकाश गूँज उठा ॥२१॥

महाकालः समुत्पत्य ताडयग्दां तथा नभः ।
कराभ्यां तन्निनादेन क्षिप्ता आसन्पुरा रवाः ॥२
अट्टाट्टहासमशिवं क्षेत्रपालश्चकार ह ।
भैरवोऽपि महानादं स चकार महारवे ॥२३
महाकोलाहलो जातो रणमध्ये भयंकरः ।
वीरशब्दो बभूवाथ गणमध्ये समंततः ॥२४
सत्रेसुर्दानवाः सर्वे तैः शब्दैर्भयदैः खरैः ।
चुकोपातीव तच्छ्रुत्वा दानवेन्द्रो महाबलः ॥२५
तिष्ठ तिष्ठेति दुष्टात्मन्व्याजहार यदा हरः ।
देवैर्गणैश्च तैः शीघ्रमुक्तं जय जयेति च ॥२६
अथागत्य स दंभस्य तनयः सुप्रतापवान् ।
शक्ति चिक्षेप रुद्राय ज्वालामालातिभीषणाम् ॥२७
वह्निकूटप्रभाऽऽयांता क्षत्रपालेन सत्वरम् ।
निरस्तागत्य साजौ वै मुखोत्पन्नमहोल्कया ॥२८

उस समय महा कालेश्वर ने भूमि एवं अन्तरिक्ष को अपने दोनों हाथों द्वारा प्रताड़ित किया। उससे भयंकर शब्द हुआ जिसे सुनकर सब असुर एकदम बेचैन हो गये। २२। इसी रीति से क्षेत्रपाल तथा भैरव

ने भी उस युद्धस्थल में महाशब्द किया था ॥२३॥ तब तो समस्त युद्ध के मैदान में चारों ओर महान् कोलाहल हो उठा और गणों के परिकर में सर्वत्र वीर-शब्दों की ध्वनि सुनाई देने लगी ॥२४॥ उस समय भय देने वाले परम तीक्ष्ण शब्दों को सुनकर समस्त दैत्यवृन्द व्याकुल हो गये और महा बलवान् दानेश्वर उन शब्दों को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गया ॥२५॥ तब शिवजी ने उससे कहा—'अरे दुरात्मा ! यहीं खड़ा रह, भाग कर मत जावे'। इतना शिव के कहने पर देवगण और असुरों के समुदाय ने जय-जयकार का उच्चारण किया ॥२६॥ उसके अनन्तर प्रतापी दम्भ के पुत्र ने वहाँ आकर ज्वाला की माला से युक्त एक भीषण शक्ति का प्रहार रुद्रदेव के ऊपर किया ॥२७॥ अग्नि की पूर्ण प्रभा के तुल्य उस छोड़ी हुई शक्ति को आते हुए देखकर प्रतापी क्षेत्रपाल ने आगे की ओर बढ़ते हुए अपने मुख की ज्वाला से उसे नष्ट कर दिया ॥२८॥

पुनः प्रवृते युद्धं शिवदानवयोर्महत् ।
चकपे धरणी द्यौश्च सनगाब्धिजलाशया ॥२९
दांभिमुक्ताञ्छरान्शंभुः शरांस्तत्प्रहितान्स च ।
सहस्रशः शरैरुग्रैश्चिच्छेद शतशस्तदा ॥३०
ततः शंभुः त्रिशुलेन संक्रुद्धस्तं जघान ह ।
तत्प्रहारमसह्याशु कौ पपात स मूर्च्छितः ॥३१
ततः क्षणेन संप्राप संज्ञां स च तदाऽसुरः ।
आजघान शरै रुद्रं तान्सर्वानात्तकार्मुकः ॥३२
बाहूनामयुतं कृत्वा छादयामास शंकरम् ।
चक्रायुतेन सहसा शंखचूडः प्रतापवान् ॥३३
ततो दुर्गापतिः क्रुद्धो रुद्रो दुर्गतिनाशनः ।
तानि चक्राणि चिच्छेद स्वशरैस्तमैद्रुतम् ॥३४
ततो वेगेन सहसा गदामादाय दानवः ।
अभ्यधावत वै हतु बहूसेनावृतो हरम् ॥३५
गदां चिच्छेद तस्याशवपाततः सोऽसिना हरः ।
शिताधारेण संक्रुद्धो दुष्टगर्वापहारकः ॥३६

इसके पश्चात् भी दानवेश्वर और भगवान् शम्भु का महान् घोर संग्राम हुआ। उस समय स्वर्ग-भूमि-पर्वत और समुद्र सब कम्पित हो उठे ॥२९॥ दम्भ के पुत्र द्वारा छोड़े गये बाणों को शम्भु ने अपनी परमोग्र बाण वृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥३०॥ इसके अनन्तर शिव ने अत्यन्त क्रोधावेश में आकर असुरेन्द्र पर अपने त्रिशूल का प्रहार किया जिससे वह असह्य वेदना होने के कारण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥३१॥ मूर्च्छा से जगकर एक क्षण के बाद ही वह असुर धनुष पर चढ़ा-चढ़ा कर बहुत ही तीक्ष्ण बाणों की बर्षा शिव पर करने लगा ॥ २ ॥ शंखचूड़ ने अपनी दश सहस्र भुजाओं से शिव को आच्छादित कर एक ही वार में एक सहस्र चक्र छोड़ दिए थे ॥३३॥ कठिन से कठिन दुर्गति के नाशक दुर्गा के पति भगवान शंकर ने उस पर महान् क्रोधित होते हुए अपने बाणों से उन समस्त चक्रों का छेदन कर दिया ॥३४॥ इसके अनन्तर दानवेश्वर अपनी बहुत बड़ी सेना के साथ गदा लेकर बहुत ही वेग से शम्भु को मारने के लिए दौड़ा तो शिव ने अपने तीक्ष्णतम खंग से उसकी गदा को काट कर फेंक दिया और उस दुरात्मा दैत्य के बढ़े हुए गर्व को चूर-चूर कर दिया ॥१५-३६॥

छिन्नायां स्वर्गदायां च चुकोपातीव दानवः।
शूलं जग्राह तेजस्वी परेषां दुःसहं ज्वलत् ॥३७
सुदर्शनं शूलहस्तमायांतं दानवेश्वरम्।
स्वत्रिशूलेन बिव्याध हृदि तं वेगतो हरः ॥३८
त्रिशूलभिन्नहृदयान्निष्क्रांतः पुरुषः परः।
तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच शंखचूडस्य वीर्यवान् ॥३९
निष्क्रामतो हि तस्याशु प्रहस्य स्वनवत्ततः।
चिच्छेद च शिरो भीममसिना सोऽपतद्भुवि ॥४०
ततः काली चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तान् क्रोधात् प्रसार्य स्वमुखं तदा ॥४१
क्षेत्रपालश्चखादान्यान्बहून्दैत्याक्रुधाकुलः।
केचिन्नेशुर्भैरवास्त्रच्छिन्ना भिन्नास्तथाऽपरे ॥४२

वीरभद्रोऽपरान्वीरान्बहून् क्रोधादनाशयत् ।
नंदीश्वरो जघानान्यन्बहूनमरमर्दकान् ।।४३
एवं बहुगणा वीरस्तदा संनह्य कोपतः ।
व्यनाशयन्बहून्दैत्यानसुरान् देवमर्दकान् ।।४४
इत्थं बहुतरं तत्र यस्य सैन्यं ननाश तत् ।
विद्रुताश्चापरे वीरा बहवो भयकातराः ।।४५

गदाके कट जाने से दानवेश्वर को बहुत भारी क्रोध हुआ और शत्रुओं को भय देने वाला प्रज्ज्वलित शूल प्रहार करने के लिए उसके उठाया । ३७ । सुदर्शन शूल को हाथ में ग्रहण कर आते हुए दानवेन्द्र को देखकर शिव ने वेगपूर्वक अपने शूल का आघात उसके हृदय में कर दिया ।३८। जिस समय त्रिशूल से उसका हृदय विदीर्ण हुआ तो उसमें से एक अन्य पुरुष निकल पड़ा । पराक्रमी शंखचूड़ ने उससे कहा–तुम यहाँ ही स्थित रहो, किन्तु जब बीर्यशाली शंखचूड़ का निष्क्रमण हो गया तो शब्द करने के साथ ही उसके मस्तक का भयावह खंग के द्वारा छेदन कर दिया गया और फिर वह भूमि पर गिर गया ।३९-४०। उसी समय महाकाली ने अपना मुख खोलकर भीषण-दंष्टाओं से उसको चबा डाला और साथ ही अन्य अनेक असुरों का भी भक्षण कर लिया ।४१। इधर क्षेत्रपाल ने क्रोधपूर्वक बहुतों का भक्षण किया तो बहुत-से भैरव के अस्त्र से छिन्न भिन्न होकर नाशवान् हो गये । ४२ । इसी तरह गणराज वीरभद्र तथा नन्दीश्वर ने क्रोधित होकर अनेक वीर असुरों का नाश कर दिया ।४३। उस समय उस सेना के महान् वीर अत्यन्त क्रोध कर देवों से द्रोह करने वाले असुरों के नाश करने में संलग्न हो गए । ४४ । ऐसे संहार से उस दैत्यराज की सेना के बहुत-से सैनिक नष्ट-भ्रष्ट हो गए और बचे-खुचे भयभीत होकर वहाँ से भाग गये । ४५ ।

।। शंखचूड़ का वध ।।

स्वबलं निहतं दृष्ट्वा मुख्यं बहुतरं ततः ।
तथा वीरान् प्राणसमान् चुकोपातीव दानवः ।।१
उवाच वचनं शंभु तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।

किमेतैर्निहतैर्मेऽद्य संमुखे समरं कुरु ॥२
इत्युक्त्वा दानवेन्द्रोऽसौ सन्नद्धः समरे मुने ।
अगच्छन्निश्चयं कृत्वाऽभिमुखं शंकरस्य च ॥३
दिव्यान्यस्त्राणि चिक्षेप महारुद्राय दानवः ।
चकार शरवृष्टिञ्च तोयवृष्टिं यथा घनः ॥४
मायाश्चकार विविधा अदृश्या भयदर्शिताः ।
अप्रतर्क्या सुरगणैर्निखिलैरपि सत्तमैः ॥५
तां दृष्ट्वा शङ्करस्तत्र चिक्षेपास्त्रं च लीलया ।
माहेश्वरं महादिव्यं सर्वमायाविनाशनम् ॥६
तेजजा तस्य तन्माया नष्टाश्चासन् द्रुतं तदा ।
दिव्यान्यस्त्राणि तन्तेव निस्तेजांस्य भवन्नपि ॥७

सनत्कुमारजी ने कहा—इस भाँति दानवेन्द्र ने अपनी प्रमुख सेना को नष्ट-भ्रष्ट होते हुए देखकर तथा प्राणों के तुल्य प्रिय बीरों के संहार का ध्यान करके बहुत भारी क्रोध किया । १ । उस समय उसने भगवान् शंकर के समक्ष में आकर उनसे कहा—मैं यहाँ बिल्कुल तैयार होकर आया हूँ, आप अच्छी तरह सम्हल जावें । इन विचारे सैनिकों को मार गिराने से क्या लाभ होगा, अब मुझ से युद्ध करें । २ । हे मुनीन्द्र ! इतना कहकर वह दैत्यराज युद्ध करने का पूरा निश्चय करके शंकर के सामने उपस्थित हो गया । ३ । दानवेन्द्र ने अपने बहुत से उत्तम अस्त्र-शस्त्रों का उस समय महारुद्र पर प्रहार किया । जैसे मेघ जल धारा की वृष्टि किया करता है उसी के समान दानवेश्वर ने बाणों की वृष्टि रुद्रदेव पर की । ४ । उस समय वह अदृश्य होकर अपनी दानवी माया फैलाते हुए अनेक प्रकार का भय दिखाने लगा जिसे देव-वृन्द में यथार्थ रूप से कोई भी न समझ पाया । ५ । प्रभु शंकर उसके इस माया जाल को देखकर लीलापूर्वक अपने अस्त्रों से उस पर प्रहार करने लगे और उसकी माया का नाश करने के लिए महान् दिव्य माहेश्वर अस्त्र का प्रयोग किया । ६ । माहेश्वरास्त्र के दिव्य तेज के प्रभाव से उसकी सारी माया नष्ट हो गई और समस्त अस्त्र तुरन्त तेजहीन हो गये । ७ ।

अथ युद्धे महेशानस्तद्‌वधाय महाबलः ।
शूलं जग्राह सहसा दुर्निवार्यं सुतेजसाम् ॥८
तच्छूलं विजयं नाम शंकरस्य परात्मनः ।
संचकाशे दिशः सर्वा रोदसीं संप्रकाशयत् ॥९
कोटिमध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम् ।
दुर्निवार्यं च दुर्द्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम् ॥१०
तेजसां चक्रमत्युग्रं सर्वशस्त्रास्त्रनायकम् ।
सुरसुराणां सर्वेषां दुःसहं च भयंकरम् ॥११
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमवलंब्य च लीलया ।
संस्थितं परम तत्र एकत्रीभूय विज्ज्वलत् ॥१२
धनुः सहस्रं दीर्घेण प्रस्थेन शतहस्तकम् ।
जीवब्रह्मस्वरूपं च नित्यरूपमनिर्तिम् ॥१३
विभ्रमद् व्योम्नि तच्छूलं शंखचूडोपरि क्षणात् ।
चकार भस्म तच्छीघ्रं निपत्य शिवशासनात् ॥१४
अथ शूलं महेशस्य द्रुतमावृत्य शंकरम् ।
ययौ विहायसा विप्र मनोयायि स्वकार्यकृत् ॥१५

उसी समय महाबलशाली महेश्वर भगवान् ने दानवेश्वर के वध करने के लिए बहुत से तेजस्वियों के द्वारा भी दुर्निवार्य शूल को ग्रहण किया ॥८॥ वह परमेश्वर शंकर का विजय नाम वाला शूल समस्त दिशाओं में और द्युलोक में अपना अतुल प्रकाश प्रसारित करता हुआ मध्याह्न समय के करोड़ों सूर्य तथा प्रलय काल की अग्नि-शिखा के सदृश निवारण न करने के योग्य, असह्य एवं अमोघ रूप वाला, शत्रुओं के नाश करने वाला था ॥९-१०॥ वह समस्त शस्त्रास्त्रों का साधक, तेज समूह के चक्र के स्वरूप वाला तथा सुरासुर सभी के लिये अति असह्य एवं अत्यन्त भयङ्कर था ॥११॥ वह तेजयुक्त अस्त्र लीलासे ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नष्ट कर देने की शक्ति वाला एवं समस्त प्रचण्डता का एक प्रज्ज्वलित स्वरूप था ॥१२॥ वह शूल एक हजार धनुष के बराबर लम्बा और सौ हाथ चौड़ा नित्य रूप वाले जीव-ब्रह्मके स्वरूप जैसा था जिसका

निर्माण किसी के द्वारा नहीं किया गया है ॥१३॥ ऐसा दिव्य अस्त्र एक क्षण में ही शिव के हाथ से छूटकर आकाश भ्रमण करते हुए शिवाज्ञा को पाकर अविलम्ब हो शंखचूड़ के मस्तक पर गिर गया और तुरन्त ही उसने दानवराज शंखचूड़ को भस्मीभूत बना दिया ॥१४॥ हे मुने ! वह दिव्यास्त्र त्रिशूल शीघ्र ही दैत्य को मार आकाश मार्ग से मनोवेग की तरह शिव के समीप में गया ॥१५॥

नेदुर्दुदुभयः स्वर्गे जगुर्गंधर्वकिन्नराः ।
तुष्टुवर्मुनयो देवा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१६
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि संततम् ।
प्रशशंस हरिर्ब्रह्मा शक्राद्या मुनयस्तथा ॥१७
शंखचूड़ो दानवेन्द्रः शिवस्य कृपया तदा ।
शापमुक्तो बभूवाथ पूर्वरूपमवाप ह ॥१८
अस्थिभिः शंखचूडस्य शंखजातिर्बभूव ह ।
प्रशस्तं शंखतोयं च सर्वेषां शंकरं विना ॥१९
विशेषेण हरेर्लक्ष्म्याः शंखतोयं महत्प्रियम् ।
संबंधिनां च तस्यापि न हरस्य महामुने ॥२०
तमित्थं शंकरो हत्वा शिवलोकं जगाम सः ।
सुप्रहृष्टो वृषारूढः सोमः स्कन्दगणैर्वृमः ॥

उस समय प्रसन्नता से स्वर्ग में दुन्दुभियाँ वजने लगीं, किन्नर और गन्धर्व गायन करने लगे, अप्सराऐं आनन्द से नर्तन करने लगीं और समस्त देवगण तथा मुनिवृन्द को अत्यन्त हर्षोल्लास हुआ ॥१६॥ भगवान् शिव पर पुष्प वर्षा हुई और ब्रह्मा, इन्द्रादि देव तथा सभी मुनिगण शंकर की प्रशंसा करने लगे ॥१७॥ दानवराज शंखचूड़ भगवान् शंकर की कृपा से शाप विमुक्त होकर अपने पहिले स्वरूप में स्थित हो गया ।१८। उस शंखचूड़ की अस्थियों से शंख जातियों का उद्‌भव हुआ । यह शंख का जल अन्यत्र सभी जगह तो प्रशस्त माना जाता है किन्तु शंकर पर नहीं चढ़ाया जाता है ॥१६॥ महालक्ष्मी और विष्णु को इस शंख का जल विशेष रूप से प्रिय होता है । इनसे सम्बन्धित देवादि को भी प्यारा

लगता है, किन्तु केवल एक शंकर ही ऐसे हैं जिन्हें यह प्रिय नहीं है।२०। इस तरह शिव उस दैत्यराज का वध कर वृष वाहन पर आरूढ़ हो उमादेवी, कुमार स्कन्द और गणों के सहित परम प्रसन्न होते हुये शिवलोक को चले गये ।२१।

हरिर्जगाम वैकुंठं कृष्णः स्वस्थो बभूव ह ।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः ।।२२
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप सर्वं निर्विघ्नमाप कम् ।
निर्मलं चाभवद्व्योम क्षितिः सर्वा सुमंगला ।।२३
इति प्रोक्तं महेशस्य चरितं प्रमुदावहम् ।
सर्वदुःखहरं श्रीदं सर्वकामप्रपूरकम् ।।२४
धन्य यशस्यमायुष्यं सर्वविघ्ननिवारणम् ।
भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ।।२५
य इदं शृणुयान्नित्य चरितं शशिमौलिनः ।
श्रावयेद्वा पठेद्वापि पाठयेद्वा सुधीर्नरः ।।२६
धनं धान्यं सुतं सौख्यं लभेतात्र न शंशयः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति शिवभक्ति विशेषतः ।।२७
इदमाख्यानमतुल सर्वोपद्रवनाशनम् ।
परमज्ञानजनन शिवभक्तिविवर्द्धनम् ।।२८
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
धनाढ्यो वैश्यजः शूद्रः शृण्वन् सत्तमतामियात् ।।२९

भगवान् अपने वैकुण्ठ में चले गये, कृष्ण भी स्वस्थ हो गये और सभी देवता अपने-अपने स्थानों को चले गये ।।२२।। इसके संहार होने से जगत् में पूर्ण स्वस्थता हो गई और सर्वतोभाव से विघ्नों का निवारण होगया, आकाश स्वच्छ हो गया और पृथ्वी मंगलमयी बन गई ।। ३ ।। मैंने यह परम पावन भगवान् शंकर के चरित्र का वर्णन किया है। यह समस्त दुःखों का हर्ता और परम सुख-सौभाग्य का देने वाला है। इसके सुनने तथा पढ़ने से लक्ष्मी की प्राप्ति और सभी कामनाओं की पूर्ति होती है ।।२४।। इससे धन और यश का लाभ होता है और यह समस्त विघ्न

बाधाओं को हटाने वाला है। भुक्ति और मुक्ति दोनों ही को यह देता है तथा मन की सब इच्छाओं को पूर्ण कर देता है। २५। जो भी कोई व्यक्ति इसको नित्य सुनता है या सुनाता है तथा कोई बुद्धिमान् स्वयं पढ़ता-पढ़ाता है यह धन-धान्य, सुख-समृद्धि और सन्तान को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। वह निस्सन्देह समस्त मनोरथों के साथ शिवकी भक्ति को भी विशेष रूपसे प्राप्ति करलेता है।२६-२७। यह एक अनुपम आख्यानहै। इससे सभी उपद्रवों का नाश होकर परम ज्ञान का तथा शिव-भक्ति की अति वृद्धि का लाभ होता है। २८। विप्र ब्रह्मतेज वाला, क्षत्रिय विजय लाभ से युक्त, वैश्य सम्पत्तिशाली और शूद्र इसके सुनने मात्र से श्रेष्ठ हो जाता है ।।२६।।

———

शतरुद्र–संहिता

।। शिवजी की आठ मूर्तियों का वर्णन ।।

श्रृणु तात महेशस्यावतारान्परमान्प्रभो ।
सर्वकार्यकरांल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ।।१
तस्य शंभोः परेशस्म मूर्त्यष्टकमयं जगत् ।
तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ।।२
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रोभीमः पशोः पतिः ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः ।।३
भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यै रष्टरूपै शिवस्य हि ।।४
धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् ।
शंकरस्य महेशस्य शास्वस्यैवेति निश्चयः ।।५
संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ।।६
बहिरंतर्जगद्विश्वं विभर्ति स्पन्दते स्वयम् ।
उग्र इत्युच्यते सद्भी रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ।।७

नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! तात ! हे प्रभो ! जब शिवजी के जो बड़े अवतार हुए हैं उनकी कथा सुनिये । ये इस लोक में समस्त कार्यों के पूर्ण करने वाले तथा प्राणिमात्र को सुख प्रदान करने वाले हैं ।।१।। यह समस्त संसार भगवान् शिवजी की आठ मूर्तियों से युक्त है । जिस प्रकार धागे में पिरोई हुई मणियों का एक समुदाय होता है उसी भाँति यह समस्त विश्व उसी में व्याप्त होकर स्थित हो रहा है ।।२।। भगवान् शिव की शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ये आठ मूर्तियाँ सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ।।३।। शिव के उक्त शर्व प्रभृति आठ रूपों से अधिष्ठित होने वाले भूमि, जल, अग्नि, पवन, अन्तरिक्ष क्षेत्रज्ञ, सूर्य

और चन्द्रमा हैं ॥४॥ शास्त्र का यह निश्चय है कि शिव महेश का विश्वम्भर स्वरूप वाला रूप इस सम्पूर्ण चर-अचर संसार को धारण किया करता है ॥५॥ इस समस्त संसार को जो वरदान देकर जीवित रखने वाला शिव का जल के स्वरूप वाला बताया गया है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! सत्पुरुष ऐसा कहा करते हैं कि जो स्वयं बाहर भीतर सर्वत्र स्थित होकर इस संसार का पालन किया करता है तथा इसे चलाता रहता है वह शिव का उग्र नाम वाला रूप होता है ॥७॥

सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम् ।
रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूपवृन्दस्य भेदकम् ॥८
सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् ।
रूप पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥९
संदीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम् ।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥१०
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य तद्रूपं महादेवस्य चाह्वयम् ॥११
आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥१२
शाखाः पुष्यन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ।
तद्वदस्य विपुर्विश्वं पुष्यते च शिवार्चनात् ॥१३
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शंकरः ॥१४

समुदाय का भेदन करने वाला सर्वव्यापक और सबको अवकाश प्रदान करने वाला आकाशात्मक भीम नाम वाला शिवका भीम रूप होता है ॥८॥ पशुरूप जीवों के पाश-बन्धन का छेदन करने वाला जो समस्त आत्माओं का अधिष्ठाता देव है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों की निवास भूमि है वह पशुपाति नाम वाला शिव का स्वरूप है ॥९॥ सूर्य के स्वरूप में रह कर जो सम्पूर्ण संसार को प्रकाश प्रदान करता है वह ईशान नाम वाला शिव का स्वरूप आकाश में फैला हुआ है ॥१०॥ अमृतमयी किरणों के

द्वारा समस्त जगत् को तृप्त एवं शीतल किया करता है अर्थात् चन्द्र स्वरूप में स्थित है वह शिव का महादेव नाम वाला रूप होता है ।११। आठवाँ परमात्मा शिव का आत्मा नाम वाला रूप होता है, जिसके मूर्त-अमूर्त सब में व्याप्त होने के कारण यह सम्पूर्ण संसार शिवरूपमय है ।।१२।। वृक्ष की जड़ के सेचन से उसकी समस्त शाखा प्रशाखाओं की पुष्टि की भाँति शिव के शरीर स्वरूप यह सारा संसार है और उसका मूलस्वरूप साक्षात् शिव है । इसके अर्चन से सम्पूर्ण विश्व पुष्ट हो जाता है ।।१३।। संसार में पुत्र-पौत्रादि के प्रसन्न रखने से पिता को परम प्रसन्नता होने के तुल्य ही समस्त संसारके साथ प्रीति भाव रखनेसे जगत् के पिता शिव स्वयं प्रसन्न हो जाया करते हैं ।।१४।।

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः ।
अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः ।।१५
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ।।१६
इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टहिश्रुताः ।
सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ।।१७

देहधारी किसी भी प्राणी के बन्धन से शिव की अष्टमूर्ति स्वरूप अपने ही को बन्धन समझ कर अपना अनिष्ट मान लेते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।।१५।। शिव अपनी अष्टमूर्ति स्वरूप आत्मा से इस सारे विश्व में अधिष्ठित होकर व्याप्त हैं । अतएव परमकारण रूप रुद्रात्मक शिव का सर्वभाव से भजनोपासन करना चाहिए ।।१६।। हे सनत्कुमारजी ! मैंने परम प्रसिद्ध शिव के आठ स्वरूप, जो सबके उपकार करने के कार्य में सर्वदा तत्पर रहा करते हैं, उनका वर्णन कर दिया । अपने कल्याण की कामना वाले पुरुष इन सबकी सेवा करें ।।१७।।

।। अर्द्धनारीश्वर शिव का प्रादुर्भाव ।।

शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ।
अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ।।१
यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धत वेधसा ।

तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुःखितः ॥२
नभोवाणी तदाऽभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥३
नारीणां कुलमीशानान्निर्गतं न पुरा यतः ।
ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शोके न पद्मभूः ॥४
प्रभावेण बिना शंभोर्नैव जायेरन्निमाः प्रजाः ।
एवं संचिन्तयन्ब्रह्मा तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥५
शिवाय परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम् ।
संचित्य हृदये प्रीत्या तपेशं परमं तपः ॥६
तीव्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः ।
अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥७

नन्दीश्वर ने कहा- हे महाप्राज्ञ ! हे तात ! अब मैं विधाता के मनोरथों के सफल करने वाले और अर्द्धनारीश्वर नाम वाले भगवान् शिव के परम श्रेष्ठ स्वरूप का वर्णन करता हूं उसे आप सुनिये ॥१॥ जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नहीं देखी तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए ॥२॥ उस समय एक आकाशवाणी हुई कि "अब मैथुनी सृष्टि की रचना करो।" यह सुनकर ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन में निश्चय कर लिया ॥३॥ इसके पहिले शिव से स्त्रियों के कुल का प्राक्ट्य नहीं हुआ था, इसी कारण विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य में समर्थ न हो सके ॥४॥ शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नहीं हो सकेगी—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव के प्रसन्न करने के लिए तपश्चर्या करने को तत्पर हुए ॥५॥ पार्वती स्वरूपिणी परम प्रधान शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय में ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने में ब्रह्माजी लीन हो गए ॥६॥ कठोरतम तपस्या में तत्पर ब्रह्माजी से शिव थोड़े ही समय में शीघ्र सन्तुष्ट हो गये ॥७॥

ततः पूर्णं चिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम् ।
अर्द्धनारीनरो भूत्वा ततो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥८

तं दृष्ट्वा शंकरं देवं शक्त्या परमयान्वितम् ।
प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥६
अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया ।
संभवाय सुसंप्रीतो विश्वकर्त्ता महेश्वरः ॥१०
वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह ।
ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ॥११
प्रजानामेव वृद्धयर्थं तपस्तप्तं त्वयाऽधुना ।
तपसा तेन तुष्टोऽस्मिन ददाति च तवेप्सितम् ॥१२
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावतधुरं वचः ।
पृथक्चकार वपुषो भागाद्देवीं शिवां शिवः ॥१३
तां दृष्ट्वा परमां शक्ति पृथग्भूतां शिवागताम् ।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥१४

इसके अनन्तर पूर्ण चिद्रूप ईश्वर ने अपनी काम प्रदायिनी मूर्ति में प्रवेश करते हुए आधी नारी और आधा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप में पदार्पण किया ॥८॥ तब ब्रह्माजी ने भगवान् शिव को अपनी परम शक्तिसे संयुक्त देखकर दण्डवत्प्रणाम करते हुए करबद्ध होकर उनक स्तुति करने का आरम्भ किया ॥६॥ उस समय समस्त देवों में परम श्रेष्ठ इस विश्व के रचने वाले महेश्वर शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहने ॥१०॥ शिव ने ब्रह्माजी से कहा—हे वत्स ! हे मेरे पुत्र ब्रह्मा ! हे महाभाग ! मैंने तुम्हारे मनोरथ को तत्व रूप से समझ लिया है ॥११॥ तुमने इस समय अपनी प्रजा की वृद्धि की इच्छा से ही यह उग्र तप किया है। मैं तुम्हारी तपस्या से अति सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होकर तुमको तुम्हारा अभीप्सित वरदान देता हूँ ॥१२॥ शिवजी ने इस तरह परम उदारभाव से मधुर वाणी में ब्रह्माजी से ये वचन कहकर अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तब उनका शिव से पृथक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा ।१३। उस शिव भगवान की परम शक्ति को महेश से अलग स्थित देखकर विनीत ब्रह्माजी प्रणामपूर्वक प्रार्थना करने लगे ॥१४॥

देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे ।
प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शम्भुना परमात्मना ।१५।
मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः ।१६।
मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ।१७।
न निगतं पुरो त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारी कुलश्रेष्ठं मम शक्तिर्न विद्यते ।१८।
सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्भवः ।
तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ।१९।
शिवे नारीकुलं स्रष्टुं शक्तिं देहि नमोस्तु ते ।
चराचरं जगद्वृद्धि हेतोर्मातः शिवं प्रिये ।२०।

विधाता ने कहा—हे अम्बिके ! देवाधिदेव आपके पतिदेव महादेव ने मेरा सृजन किया और इस सम्पूर्ण प्रजा की भी सृष्टि उन्हीं ने की ।१५। हे शिवे ! मैंने इन समस्त देवों की रचना मन से की है । इनके पुनः पुनः निर्माण करने पर भी कुछ वृद्धि नहीं होती दिखाई दे रही है ।१६। अब इससे आगे मैथुन द्वारा उत्पन्न होकर जन्म ग्रहण करने वाली प्रजा की रचना करने की और प्रजा बढ़ाने की मुझे इच्छा हुई है। यह सब मेरी ही प्रजा है ।१७। अब तक आपसे यह श्रेष्ठ नारी-कुल, जिसका विनाश नहीं है उत्पन्न नहीं हुआ था । अतः यह नारीकुल परम श्रेष्ठ है इसके सृजन की शक्ति मेरे अन्दर नहीं है ।१८। ब्रह्माजी ने कहा– हे जगज्जननी ! समस्त शक्तियों का उद्भव आपकी शक्ति के द्वारा ही होता है अतएव सबकी ईश्वरी आपकी सेवा में मेरा निवेदन है कि परमशक्ति स्वरूपिणी आप मुझे इस नारीकुल के सृजन करने की महाशक्ति प्रदान करने की कृपा कीजिए। मेरा आपको प्रणाम है । सम्पूर्ण चराचर जगत् का कारण एकमात्र भगवान् शिव ही हैं ।१९-२०।

अन्यः त्वत्तः प्राथयामि वरं च वरदेश्वरि ।
देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ।२१।

चराचरविवृद्ध्यर्थमीशेनैकेन सवगे ।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ॥२२
एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरो ।
तथास्त्विति वचः प्रोच्यः तच्छक्तिं विधये ददौ ।२३
तस्माद्धि सा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी ।
शक्तिमेकां भ्रुवोर्मध्यात्ससर्जात्मसमप्रभाम् ।२४
तमाह प्रहसन्प्रेक्ष्य शक्तिं देववरो हरा ।
कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ।२५
तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ।२६
तमाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा ।
ब्राह्मणो वचनाद्देवी दक्षस्य दुहिताऽभवत् ।२७
दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे सा शिवा मुने ।
विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ।२८

ब्रह्माजी ने कहा—हे वरदेश्वरी ! मैं आपसे एक अन्य वरदान के प्रदान करने की भी प्रार्थना करता हूँ उसे भी आप मुझ पर कृपा करती हुई देने की उदारता करें। हे जगत् की माँ ! मेरा आपको बार-बार प्रणाम है ।२१। एक उत्तम शक्ति के द्वारा ही इस समम्त चराचर जगत् की बढ़ोत्तरी के लिए आप मेरे पुत्र दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में प्रकट हो जावेंगी ।२२। इस प्रकार ब्रह्मा ने जब याचना की नो परमेश्वरी भगवती ने कहा—ऐसा ही हो जायगा—यह कहते हुए उस परम शक्ति को विधाता को दे दिया ।२३। जगदीश्वर जगन्मयी भवानी ने उसी शक्ति के द्वारा अपने भृकुटि के मध्य भाग से अपने ही सदृश कमनीय कान्ति वाली एक अन्य शक्ति का निर्माण कर दिया ।२४। देवों में परम कृपा के सागर लीलाधारी भगवान् शिव ने उस शक्ति को देखकर मुस्कराते हुए जगत् की माता से कहा ।२५। शिव ने कहा—हे देवि ! अब आप पितामह परमेष्ठी की घोर तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हो गई हैं। अतः इनकी आराधना से सन्तुष्ट होती हुई आप इनके सभी मनोरथों को

पूर्ण कर दो।२६। उसी समय देवी ने शङ्कर की आज्ञा को मानकर ब्रह्मा के द्वारा याचना की गई दक्ष की पुत्री होना अङ्गीकार कर लिया।२७। हे मुनीश्वर ! उस जगदीश्वरी शिवा ने उसी समय ब्रह्माजी को अपनी असीम एवं अनुपम शक्ति प्रदान कर दी और पुनः शिव के अङ्ग में प्रविष्ट हो गई और महाशक्ति के सिन्धु भगवान् शिव भी तब अन्तर्धान हो गये।२८।

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्स्त्रिया भागः प्रकल्पितः।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी।२९
एतत्ते कथितं तात शिवरूप मसोत्तमम्।
अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामङ्गलदं सदाम्।३०
एतदाख्यानमनघं यः पठेच्छृणुयादपि।
स भुक्त्वा सकलान्भोगान्प्रयाति परमां गतिम्।३१

उसी समय से इस जगत् में स्त्री का भाग देना कल्पित हुआ। ब्रह्माजी को महान् आनन्द हुआ और फिर इस संसार में मैथुन द्वारा होने वाली सृष्टि का आरम्भ हो गया।२९। हे तात ! शिव का यह अत्यन्त श्रेष्ठ स्वरूप तुमको बतला दिया है। यह अर्द्धनारी ओर नरार्द्ध स्वरूप सज्जन पुरुषों को परम मङ्गल का प्रदाता है।३०। जो इस कथा का पाठ या श्रवण करता है वह सब भोग भोगकर मोक्ष पाता है।३१।

श्वेतमुनि और ऋषभदेव के रूप में शिवावतार

सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा।
रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा।१
सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे।
कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः।२
मनोर्वैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति।
तदा चतुर्युगाश्चैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे।३
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च।
उत्पश्यामि विधे ब्रह्मन्द्वापराख्ययुगान्तिके।४

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे ।
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः ।५।
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके ।
भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ।६।
हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे ।
तदा शिष्याः शिखायुक्त भविष्यन्ति विधे मम ।७।

नन्दीश्वर ने कहा— हे सब के ज्ञाता सनत्कुमार ! रुद्र द्वारा कथित यह भगवान् शंकर का चरित्र ब्रह्मा को सर्वदा सुख प्रदान करने वाला होता है ।१। शिव ने कहा—सप्तम मन्वन्तर के वाराह नामक कल्प में समस्त लोकों में प्रकाश प्रसारित करने वाले कल्पेश्वर भगवान् अवतीर्ण होंगे ।२। वे वैवस्वत मनु तेरे, प्रपोत्र रूप में होंगे । हे ब्रह्मा ! उस समय उस मन्वन्तर में चार युग होंगे ।३। हे ब्रह्मन् ! हे विधे ! ब्राह्मणों का हित सम्पादन करने के लिये और समस्त लोकों पर कृपा करने के वास्ते द्वापर युग के अन्त समय में मैं अवतीर्ण होऊँगा ।४। हे विधाता ! जब युगों की प्रवृत्ति होने का कार्य आरम्भ हो जायगा तो जिस समय प्रथम बार द्वापर आयेगा उस वक्त व्यासजी स्वयं उसके प्रभु होंगे ।५। उस समय विप्रवृन्द की भलाई करने के लिए जब कलियुग का अन्त होगा तो मैं शिवा के साथ श्वेत नामधारी मुनिश्रेष्ठ होकर जन्म लूँगा ।६। उस समय ब्रह्मा स्वयं हिमाचल के रमणीय चोटी पर पर्वतोत्तम छागल में मेरे शिखा से युक्त शिष्य बनेंगे ।७।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।८।
ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ।
जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः ।९।
द्रष्टुं शक्यो नरैर्नाहं ऋते ध्यानत्पितामह ।
दानधर्मादिभिर्वत्स साधनैः कर्महेतुभिः ।१०।
द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः ।
तदा भविष्यामि सुतारोः नामतः कलौ ।११।

तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ।१२।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।
ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ।१३।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु पुरान्तिके ।१४।

तब श्वेत, श्वेताश्व, श्वेत लोहित और श्वेतशिख ये चारों ध्यान योग से मेरे पुत्र होंगे ।८। उस समय तत्व दृष्टि से मेरे अव्यय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर मेरे अन्य अनेक भक्त बन जायेंगे और परब्रह्म के ध्यान में समाधि लगाकर आवागमन तथा वार्धक्य केशादि रहित होकर सुखी होंगे ।९। हे पितामह ! मैं ध्यान योग के बिना मनुष्यों को कभी भी दिखाई नहीं दे सकता हूँ। केवल दान-धर्म आदि सत्कर्म युक्त साधनों द्वारा मुझे प्राणी देखने में समर्थ हो सकते हैं ।१०। द्वितीय द्वापर युग में सत्य नाम वाले प्रजापति व्यास होंगे उस समय कलियुग में मैं 'सुतार' इस नाम से प्रसिद्ध होऊँगा ।११। उस वक्त भी दुन्दुभि, शतरूप हृषीक और केतु इन नामों वाले वेद के ज्ञाता ब्राह्मण मेरे शिष्य बनेंगे ।१२। ये चारों शिष्य मेरे अध्यक्ष अविनाशी स्वरूप को तात्विक रूप से जानकर मेरे लोक में पहुँच जायँगे और मुक्त हो जायँगे ।१३। तीसरे द्वापर में भार्गव मुनि व्यास बनेंगे उस समय मैं पुर के निकट ही दमन—इस नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करूँगा ।१४।

तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ।
विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ।१५।
शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन ।
निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्त्तयिष्ये कलाविह ।१६।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः ।
तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ।१७।
तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तत्रापि ब्रवे विधे ।१८।

सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दुर्भो दुरतिक्रमः ।
शिष्यैः साहाय्यं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ।१९
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ।
तदा योगी भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ।२०

उस वक्त वहाँ मेरे विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन इन नामों वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।१५। हे चतुरानन ! तब मैं व्यासजी के शिष्यों की पूर्ण सहायता करूँगा और कलियुग में भी मोक्ष प्राप्ति के सन्मार्ग को बताऊँगा ।१६। चौथे द्वापर युग में अंगिरा ऋषि व्यास जी के स्वरूप में आकर अवतीर्ण होंगे । उस वक्त मैं सुहोत्र नामधारी होकर प्रकट होऊँगा ।१७। हे विधे ! उस समय भी मेरे निम्न नामों वाले चार पुत्र योग के साधन करने वाले परम महान् आत्मा वाले जन्म लेंगे और उनके नाम ये होंगे ।१८। सुमुख, दुर्मुख, दुरतिक्रम और दुदर्भ ये नाम हैं । हे ब्रह्मा ! उस वक्त भी मैं हर तरह से व्यास के होने वाले शिष्य समुदाय का सहायक रहूँगा ।१९। पाँचवें द्वापर में सविता देव व्यास बनेंगे तब भी मैं कंक नाम धारण कर अति महान् योगी तथा तपस्वी के स्वरूप में प्रकट होऊँगा ।२०।

तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानिशृणुष्व मे ।२१
सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ।
विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृति ।२२
तत्रापि कङ्कनामाऽहं साहाय्यं सवितुर्विधे ।
व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ।२३
परिवृत्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः ।
कर्ता वेदविभागस्य मृत्युर्व्यासो भविष्यति ।२४
तदाप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ।
व्यासस्य सुसाहाय्यार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ।२५
तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ।
सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ।२६

सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ।
तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ।२७
योगं संदृढयिष्यामि महायोगविचक्षणः ।
काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ।२८

उस समय भी योग की साधना करने वाले चार ही पुत्र महान् आत्मा वाले उत्पन्न होंगे जिनके नाम अधोलिखित हैं ।२१। सनक और सनातन के अतिरिक्त परम सामर्थ्य वाले सनन्दन तथा अहंकार से रहित, विभु और निर्मल हृदय वाले चौथे सनत्कुमार नामक होंगे ।२२। हे विधाता उस युग में मेरा नाम कङ्क होगा और मैं तब निवृत्ति के उत्तम मार्ग की वृद्धि करते हुए व्यास जी का सहायक बनूँगा ।२३। इसके पश्चात् जिस समय छठवाँ द्वापर युग का समय उपस्थित होगा तब मृत्यु नामक व्यास के रूप में जन्म ग्रहण करेंगे जिन्होंने लोकों रचना तथा वेदों का यथाक्रम विभाजन किया है ।२४। उस वक्त भी मेरा आविर्भाव लोकाक्षि के नाम से होगा और व्यास की सहायता करते हुए निवृत्ति के मार्ग को ही बढ़ाने वाला रहूँगा ।२५। उस वक्त भी सुधामा, संजय, विरजा और विजय नाम वाले मेरे चार शिष्य बहुत ही दृढ़ ब्रत के धारण करने वाले होंगे ।२६। हे विधिदेव ! जब सप्तम द्वापर युग आयेगा तब इन्द्र व्यास होंगे और मैं सर्वज्ञाता जैगीषव्य होकर प्रकट होऊँगा ।२७। उस समय मैं महान् योग में अत्यन्त निपुण होकर योग को सुदृढ़ बनाऊँगा और काशी में एक गुफा के अन्दर परम उत्तम स्थान की रचना कर कुशासन पर संस्थित रहूँगा ।२८।

साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः ।
उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ।२९
तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे ।
सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ।३०
अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
कर्त्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ।३१
तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः ।

व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगवित्तम ।३२।
कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः ।
चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ।३३।
नवमे परिवर्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ।
भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताह्वयः ।३४।
व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये ।
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ।३५।

व्यास स्वरूप में जो उस वक्त शतक्रतु होंगे उनकी सहायता करते हुए भक्तों का उद्धार करूँगा ।२९। उस समय भी मेरे सारस्वत-योगीश-मेघवाहन और सुवाहन नाम वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।३०। जब इसी क्रम से अष्टम द्वापर आयेगा तब वसिष्ठ मुनि व्यास होंगे और ये ही मुनि श्रेष्ठ उस वक्त वेदों के विभाग करने वाले बनेंगे ।३१। हे योग ज्ञान रखने वालों में परम श्रेष्ठ ! उस समय मेरा नाम दधिवाहन होगा और व्यास का सहायक रहूँगा ।३२। उस वक्त भी परम योगी कपिल-आसुरि-पञ्च-शिख और शाल्वल नाम वाले चार पुत्र होंगे जो सभी समान रूप से योग्यता रखने वाले होंगे ।३३। हे ब्रह्मा ! नवम द्वापर युग में मुनियों में अति श्रेष्ठ सारस्वत नामधारी व्यास होंगे ।३४। उस वक्त में होने वाले व्यास का ध्यान रखकर निवृत्ति मार्ग की वृद्धि के लिये ही मैं ऋषभ नाम से आविर्भूत होऊँगा ।३५।

पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ।
चत्वारस्तत्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ।३६।
तैः साकं दृढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते ।
करिष्यामि साहाय्यं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ।३७।
तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ।
उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ।३८।
सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यः सुयोगकृत् ।
सारस्वतव्यासमनः पूर्त्तो नानोतिकारकः ।३९।

अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ।
जीवितो हि मृतः क्ष्वेडदोषतो जनकोज्झितः ।४०।
प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः ।
ययौ तद्वेश्म सहसा ऋषभः स मदात्मकः ।४१।
पूजितस्तेन स मुनिः सद्रूपश्च कृपानिधिः ।
उपादिदेश तद्धर्मान्राज्ययोगान्प्रजापते ।४२।

उस समय मेरे पराशर-गर्ग-भार्गव और गिरीश नाम वाले चार परम श्रेष्ठ योगी शिष्य रूप में प्रकट होंगे ।३६। हे प्रजापते ! इनको साथ में लेकर मैं संसार योग के मार्ग को अति सुदृढ़ बनाते हुए व्यास का सहायक बनूँगा ।३७। मैं उस वक्त अत्यन्त दुःखित भक्तजनों का और तुम्हारा भी उद्धार करूँगा ।३८। मेरा यह अवतार ऋषभ के नाम वाला सुयोग करने के लिये सारस्वत व्यास मुनि का सहायक और बहुविध कल्याण का करने वाला होगा ।३९। उस समय मैंने अवतार लेकर भद्रायु नाम वाले एक नृप के बालक को जो छींक के दोष के कारण मृत्युगत हो गया था और पिता ने त्याग दिया था उसे पुनः जीवित कर दिया था ।४०। जब वह बालक सोलह वर्ष का हो गया उस समय उस राजा के घर में मेरी आत्मा ऋषभ के स्वरूप में हो गई थी ।४१। हे प्रजापते ! उस वक्त परम शोभित स्वरूप वाले कृपा के निधि उन मुनि का बहुत बड़ा आदर-सत्कार किया गया था । मुनिवर ने राजा को राजयोग से युक्त धर्म का उपदेश दिया था ।४२।

ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशम् ।४३।
तदङ्गभस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ।
स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ।४४।
इति भद्रायुषं सम्यगनुश्वास्य समातृकम् ।
ययौ स्वैरगस्ताभ्यां पूजितो ऋषभः प्रभुः ।४५।
भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे ।
राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्त्तिमालिनीम् ।४६।

इत्थंप्रभाव ऋषभोवतारः शंकरस्य मे ।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ।४७
ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् ।
स्वर्ग्यं यणस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नतः ।४८

ऋषभ देव ने परम प्रसन्न होकर राजा को एक दिव्य कवच-शङ्ख और समस्त शत्रु समुदाय का नाश करने वाला एक खड्ग प्रदान किया था ।४३। दीनजन पर दया की वृष्टि करने वाले ऋषभ मुनिराज ने उस राजा के समस्त अंगों में भस्म लगाकर उसे बारह हजार हाथियों के समान बल प्रदान किया ।४४। उस समय माता के साथ भद्रायु को भलीभाँति समझा कर धीरज दिया और फिर माता एवं पुत्र द्वारा वंदित होकर ऋषभ मुनि अपने अभीष्ट स्थान को चले गये थे ।४५। हे विधे ! इसके अनन्तर राजर्षि भद्रायु समस्त शत्रुओं पर विजय पाकर कीर्त्ति-मालिनी नाम वाली एक सुन्दर कन्या के साथ विवाह कर धर्म के साथ राज-काज करने में तत्पर हो गये ।४६। मेरे इस नवम ऋषभ अवतार का ऐसा प्रभाव होता है जो सदा सत्पुरुषों का उद्धारक–दीनों का वन्धु-रूप हुआ है। मैंने तुमको इसे सुना दिया है। यह ऋषभ चरित्र मानवों को पवित्र बना देने वाला, स्वर्ग सुख प्रदाता और यश तथा आयु की वृद्धि करने वाला है। इसे सब को यत्न के साथ अवश्य ही श्रवण करना चाहिए ।४७–४८।

ग्यारह रुद्रावतारों का वर्णन

एकादशावतारान्वै शृण्वथो शङ्करान्वरान् ।
यान्छ्रुत्वा न हि बाध्येत बाधाऽसत्यादिसम्भवा ।१
पुरा सर्वे सुराः शक्रमुखा दैत्यपराजिताः ।
त्यक्त्वामरावतीम्भीत्याऽपलायन्त निजाम्पुरीम् ।२
दैत्यप्रपीडिता देवा जग्मुस्तं कश्यपान्तिकम् ।
बद्ध्वा करान्नतस्कंन्धाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम् ।३
सुनुत्वा तं सुराः सर्वे कृत्वाविज्ञप्तिमादरात् ।
सर्वं किवेदयामासुः स्वदुःखं तत्पराजयम् ।४

तत: स कश्यपस्तात तत्पिता शिवशक्तधी: ।
तदाकर्ण्यामराकं वै दु:खिमोऽभूत्तदाऽधिकम् ।५
तानाश्वास्य मुनि: सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधी: ।
काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीम्मुने ।६
गङ्गांभसि तत: स्नात्वा कृत्वा तं विधिमादरात् ।
विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरं प्रभुम् ।७

नन्दीश्वर ने कहा—अब भगवान् शिव के ग्यारह परम श्रेष्ठ अवतारों की कथा सुनो जिससे असत्य आदि के दोषों से उत्पन्न होने वाली बाधा मनुष्यों को कभी भी पीड़ित नहीं किया करती हैं ।१। पूर्व समय में इन्द्रादि देवगण दैत्यों से पराजित होकर सब भयभीत होते हुए अपनी अमरावती को छोड़कर इधर-उधर भाग गये ।२। असुरों से उत्पीड़ित होकर समस्त देवता कश्यप ऋषि के पास पहुँचे और भयाकुल होकर दोनों हाथ जोड़कर कन्धा झुकाते हुए उन्हें प्रणाम किया ।३। इसके अनन्तर अपने दैत्यों से होने वाले पराजय के दु:ख के विषय में ऋषि से आदरपूर्वक प्रार्थना की ।४। हे तात ! देवगण के पिता भगवान् शिव में आसक्त होने के कारण उनकी उस प्रार्थना को सुनकर विशेष दु:खित हुए ।५। हे मुने ! तब परम शान्त बुद्धि वाले कश्यप ऋषि ने देवताओं को आश्वासन देते हुए धैर्य बधाया और प्रसन्नता के साथ विश्वनाथ की पुरी काशी को चले गये ।६। वाराणसी में गंगा स्नान कर विधिपूर्वक अपना नित्य नैमित्तिक कर्म सादर समाप्त कर उमा के सहित जगदीश्वर विश्वनाथ का अर्चन किया ।७।

शिवलिंगं सुसंस्थाप्त चकार विपुलं तप: ।
शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया ।८
महान्कालो व्यतीताय तपस्तस्य वै मुने ।
शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्य्यशालिन: ।९
अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वर दातुं तदर्षये ।
स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धु: सतां गति: ।१०
वरं ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नोमहेश्वर: ।

कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ।११।
दृष्ट्वाऽथ तं महेशानं स प्रणम्य कृताञ्जलिः ।
तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः ।१२।
देवदेव महेशान शरणागतवत्सल ।
सर्वेशः परमात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः ।१३।
बलनिग्रहकर्त्ता त्वं महेश्वर सतां गतिः ।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ।१४।

काशीपुरी में कश्यप ऋषि ने शिव के लिंग की स्थापना करके देवगण की भलाई करने की इच्छा से शिव को प्रसन्न करने के लिये प्रेम भाव के साथ अत्यन्त कठिन तपस्या की ।८। हे मुनिवर ! इस तरह विश्वनाथ के चरणों में धीरज के साथ मन लगाकर तपश्चर्या करते हुए कश्यप मुनि का बहुत सा समय व्यतीत हो गया ।६। इसके पश्चात् ऐसे मनोयोग से कठिन तपस्या करने वाले ऋषि को परम सन्तुष्ट होकर प्रसन्नता से वरदान देने के लिये सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले दीनबन्धु शिव प्रकट हो गये ।१०। उस समय शिव ने भक्तवत्सलता के कारण द्रवीभूत होकर परम भक्त कश्यप ऋषि से कहा—लो, मेरा यह वरदान ग्रहण करो ।११। भगवान् महेश्वर का साक्षात् दर्शन कर कश्यप ऋषि अत्यन्त हर्षित हुए और उत्तम बुद्धि वाले कश्यप ने साञ्जलि उनको प्रणाम कर स्तुति करना आरम्भ किया ।१२। कश्यप ऋषि ने निवेदन किया—हे देवदेव ! हे शरणागत वत्सल ! आप सब के स्वामी, परमेश और ध्यान-योग से प्राप्त करने के योग्य हैं । आप सर्वदा अविनाशी एवं अद्वैत रूप हैं ।१३। हे महेश्वर ! आप बल के अवरोधक, सज्जनों को सद्गति देने वाले, दीन-हीनों के बन्धु, दया के अगाध सागर और अपने भक्तजनों की रक्षा करने में कुशल हैं ।१४।

एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ।
दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ।१५।
असमर्थो रमेशोऽपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः ।
अतः सुरामच्छरणा देवयन्तोऽसुखं च तत् ।१६।

तदर्थं देवदेवेश देवदु:खविनाशक ।
त्वत्पूरितां तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ।१७।
शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाऽहं महेश्वर ।
कामं मे पूरय स्वामिन्देवदु:खं विनाशय ।१८।
पुत्रदु:खैश्च देवेशः दु:खितोऽहं विशेषतः ।
सुखिनं कुरु मामीश सहायस्त्वं दिवौकसाम् ।१९।
भूत्वा मम सुता नाश देवायक्षाः पराजिताः ।
दैत्यैर्महाबलैः शम्भो सुरानन्दप्रदो भव ।२०।
सदैवास्तु महेशान सर्वलेखसहायकृत् ।
यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत सुरान्प्रभो ।२१।

हे प्रभो ! ये समस्त देवगण आपके हैं और विशेष रूप से ये आपकी भक्ति करने वाले हैं । इस समय ये बिचारे असुरों से पराजित होकर महादु:खित हो रहे हैं । आप कृपा कर इनकी रक्षा कीजिए ।१५। भगवान् विष्णु भी स्वयं असमर्थ होकर आपको ही आकर कष्ट देते हैं । अतएव देवगण दु:खित होते हुए बार-बार मेरी शरण में आते हैं और अपने उत्पीड़न की बात कहा करते हैं ।१६। हे देवेश्वर ! देवों के दु:ख विनाशक ! अपने इसी मनोरथ की पूर्णता के लिये आपको प्रसन्न करने को मैंने इस घोर तपस्या करने का अनुष्ठान किया है ।१७। हे स्वामिन् ! हे महामहेश्वर ! मैं सब प्रकार से अब आपकी शरण में आ गया हूँ । आप कृपा कर मेरी कामना सफल करते हुए देवगण की पीड़ा का निवारण करें ।१८। हे ईश ! मैं अपने आत्मजों के दु:ख से विशेष दु:खित हो रहा हूँ । आप स्वयं सर्वदा देवों के सहायक रहे है अब इनका दु:ख दूर कर मुझे सुख प्रदान करें ।१९। हे शम्भो ! हे नाथ ! देवगण मेरे पुत्र होते हुए इन दुष्ट दैत्यों से पराजित हुए हैं । आप सदा यक्ष और देवों को आनन्द देने वाले हैं ।२०। हे महेशान ! आप समस्त देवगण की सहायता करने वाले हैं । अतः अब ऐसा अपना अनुग्रह करें जिससे दैत्यों द्वारा देवताओं को कोई पीड़ा की बाधा उपस्थित न हो ।२१।

इत्युक्तस्य तु सर्वशस्तथेति प्रोच्य शंकरः ।

पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हर: ।२२
कश्यपोऽपि महाहृष्टः स्वस्थानमगमद्द्रुतम् ।
देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात् ।२३
ततः स शङ्करः सर्वं सत्यं कर्तुं स्वकं वचः ।
सुरभ्यां कश्यपाज्जज्ञे एकादशस्वरूपवान् ।२४
महोत्सवस्तदाऽऽसीद्धि सर्वं शिवमवं त्वभूत् ।
आसन्हृष्टाः सुराश्चाथ मुनिना काश्यपेन च ।२५
कपाली १ पिंगलो २ भीमो ३ विरूपाक्षो ४ विलोहितः ५।
शास्ताऽ६ जपाद ७ हिर्बुध्न्यः शंभु ९ श्चण्डो १० भवस्तथा११।२६
एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः ।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाः शिवरूपाः सुखास्पदाः ।२७
ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः ।
दैत्याञ्जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः ।२८

नन्दीश्वर ने कहा—जब कश्पक ऋषि ने ऐसी दीन प्रार्थना की तो 'ऐसा ही होगा' इतना कहकर उनके देखते हुए ही भगवान् शङ्कर वहाँ ही अन्तर्हित हो गये ।२२। इसके अनन्तर कश्यप मुनि अत्यन्त प्रसन्नता के साथ शीघ्र अपने स्थान पर लौट आये और यह समस्त वृतान्त प्रेमपूर्वक देवगण को सुना दिया ।२३। इसके पश्चात् भगवान् शिव अपना वचन सत्य करने के लिये एकादश स्वरूप धारण कर कश्यप ऋषि से सुरभि में प्रकट हुए ।२४। उस समय विश्व में सर्वत्र आनन्दोल्लास छा गया । ऐसा प्रतीत होता था मानो यह जगत् सब शिव स्वरूप ही हो गया है । समस्त देवगण कश्यप जी से बहुत अधिक प्रसन्न हुए और उत्सव मनाने लगे ।२५। सुरभि के एकादश पुत्रों के नाम कपाली-पिंगल-भीम-विरूपाक्ष-विलोहित-शास्ता-अहिर्बुध्न्य-शम्भु-चण्ड और भव हुए थे ।२६। ये एकादश रुद्र सुरभि के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए हैं और इन सबका उद्भव केवल देवगण के कार्य सम्पादन करने ही के लिये हुआ था । ये सब सुख के आलय साक्षात् शिव के स्वरूप हैं ।२७। ये महान् बली एवं परम

पराक्रमी वीर थे । कश्यप के पुत्र रूप में उत्पन्न होकर सुरों की सहायता इन ग्यारह रुद्रों का प्रादुर्भाव हुआ । इन्होंने युद्धमें दैत्यों का संहार किया ।२८

तद्रुद्रकृपया देवा दैत्याञ्जित्वा च निर्भयाः ।
चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थमानसाः ।२९
अद्यापि ते महारुद्राः सर्वे शिवस्वरूपकाः ।
देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि ।३०
ऐशान्याम्पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः ।
विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः ।३१
तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिताः ।
सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागशः ।३२
इति ते वर्णितास्तातावतारः शङ्करस्य वै ।
एकादशमिता रुद्राः सर्वलोकसुखावहाः ।३३
इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ।३४
य इदं शृणुयात्तात श्रावणेद्वा समाहितः ।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्ति लभेत सः ।३५

इसके उपरान्त एकादश रुद्रों के अनुग्रह से दैत्यों पर विजय प्राप्त कर देवगण ने निर्भय होकर इन्द्रादि के सहित सुखपूर्वक अपने राज्य के आनन्द का अनुभव किया ।२९। आज तक भी शिव के स्वरूप वाले ये महारुद्र देवगण की रक्षा करने के लिये निरन्तर देवलोक में विराजमान रहते हैं।३०। परम भक्तवत्सल विविध लीला-कुशल ये ईशान दिशा में सदा निवास करते हुए वहाँ रमण किया करते हैं ।३१। उसके अनुगामी सेवक करोड़ों की संख्या में हैं जोकि त्रिभुवन में सब जगह चारों ओर स्थित रहा करते हैं ।३२। हे तात ! हमने तुम्हारे समक्ष से भगवान् शिव के इन एकादश अवतारों का वर्णन कर दिया। यह चरित्र सबको अत्यन्त सुख देने वाला होता है ।३३। जो कोई भी इस परम पावन चरित्र को सुनता या सुनाता हैं वह इस लोक में समस्त लौकिक सुखों का उपभोग कर अन्त समय में मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ।३४-३५।

दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा का जन्म

अथान्यच्चरितं शम्भोः शृणु प्रीत्यामुने ।
यथाबभूव दुर्वासाः शंकरो धर्महेतवे ।१।
ब्रह्मपुत्रो बभूवात्रितपस्वी ब्रह्मद्वित्प्रभुः ।
अनसूयापतिर्धीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः ।२।
सुनिर्देशाद्ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया ।
स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ।३।
प्राणानायम्य विधिवन्निविन्ध्यातटिनीतटे ।
तपश्चचार सुमहदन्दोऽव्दशतं मुनिः ।४।
य एक ईश्वरः कश्चिदविकारो महाप्रभुः ।
स मे पुत्रवरं दद्या दिति निश्चितमानसः ।५।
बहुकालो व्यतीयाय तस्मिन्स्तपति सत्तपः ।
आविर्वभूव तत्मात्तु शुचिज्ज्वाला महीयसी ।६।
तयासन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः ।
तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ।७।

नन्दीश्वर ने कहा—हे महामुने ! अब आप भगवान् शिव का वह चरित्र प्रेमपूर्वक सुनो जिसमें शिव ने धर्म के निमित्त से दुर्वासा का स्वरूप ग्रहण किया था ।१। परम तपस्वी, पूर्ण ब्रह्म के ज्ञाता, महामनीपी, विधाता के अत्यन्त आदेश-पालक और अनसूया के पति अत्रि मुनि ब्रह्मा जी के पुत्र थे ।२। अपने पिता की आज्ञा मानकर पुत्र प्राप्ति की इच्छा से अत्रि अपनी पत्नी के साथ त्र्यक्ष नामक गिरि पर तपश्चर्या करने के लिये चले गये ।३। विन्ध्य गिरि के निकट नदी तट पर अत्रि मुनि ने सविधि अपने प्राणों को रोक कर निश्चिन्त रूप से सौ वर्ष तक महाघोर तपस्या की ।४। उस समय अत्रि ने अपने हृदय में ऐसा ठान लिया था कि जो भी कोई अधिकारी एकमात्र परमेश्वर महाप्रभु हैं वे मुझे अवश्य ही श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करने का वरदान देंगे ।५। इस तरह अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए जब अधिक समय व्यतीत हो गया तो उनके मस्तक से बहुत ही तीक्ष्ण पवित्र अग्नि की ज्वाला प्रकट हुई ।६। उस अग्नि-

ज्वाला का ऐसा तीव्रतम तेज था कि समस्त इन्द्रादि देवगण, मुनिमण्डल, ऋषि समूह और लोक भस्म होकर पीड़ित होने लगे ।।७।।

अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ।
ब्रह्मस्थान ययुः शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ।।८
नुत्वा नुत्वा विधिन्देवास्तत्स्वदुःखन्न्यवेदयन् ।
ब्रह्मा सह सुरैस्तात विष्णुलोक ययादरम् ।।९
तत्र गत्वा रमानाथं नुत्वा नुत्वा विधिः सुरैः ।
स्वदुःखं तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ।।१०
विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ।
हरं प्रणम्य तत्रैत्यंतुष्टाव परमेश्वरम् ।।११
स्तुत्वा बहुतया विष्णुं स्वदुःखं च न्यवेदयत् ।
शर्वं ज्ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्च तपसः परम् ।।१२
अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा ।
मुने संमंत्रयाञ्चक्रु रन्योन्यं जगतां हितम् ।।१३
तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ।
जग्मुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरं दातुं तदर्षये ।।१४
स्वचिह्नचिह्नतांस्तान्स दृष्ट्वाऽत्रिर्मुनिसत्तमः ।
प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिरादरात् ।।१५

हे मुनिवर ! उस समत इन्द्रादि देववृन्द और मुनि आदि सभी उस अग्नि से संतप्त होकर शीघ्र ही ब्रह्माजी के निवास स्थान पर गये ।।८।। हे तात ! वहाँ पहुंच कर सबने प्रणामपूर्वक स्तवन कर ब्रह्माजी से अपने दुःख का वृत्तान्त बताया । तब ब्रह्मा भी उन सबको साथ लेकर विष्णु-लोक को गये ।।९।। हे मुनिराज ! वहाँ पहुंचकर सब देवों के सहित विष्णु को बार-बार प्रणाम करते हुए उनसे अपने दुःख की प्रार्थना की ।।१०।। इसके अनन्तर इन सबको अपने साथ लेकर भगवान् विष्णु शिव के समीप गये । वहाँ महेश्वर को प्रणाम करके सभी लोग भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ।।११।। अधिक समय तक स्तुति करने के पश्चात् व्यापक शिव से अत्रि के तप द्वारा उत्पन्न अग्नि के तेज से होने वाला

अपने दुःख का निवेदन किया ।१२। हे मुने ! उस समय वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों ने परस्पर में मिलकर समस्त लोकों के कल्याण के लिये परामर्श करना आरम्भ करदिया ॥१३॥ हे देव ! खूब सोच विचार कर ब्रह्मादि तीनों देवता अत्रि ऋषि को वरदान देने के लिए शीघ्रता से ऋषि के आश्रम में गये ॥१४। वहाँ उस समय अत्रि ने इन तीनों को अपने-अपने विशेष चिह्नों से अंकित देखकर सादर सबको परम प्रिय वाणी द्वारा प्रणाम किया और स्तुति करने लगे ॥१५॥

ततः स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥१६
हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगताम्मताः ।
प्रभवश्चेश्वराः सृष्टिरक्ष संहारकारकाः ॥१७
एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे ।
यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ॥१८
यूयं त्रयः सुराः कस्मादागता वरदर्षभाः ।
एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥१९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः ।
यादृवक्तस्ते संकल्पस्तथैवाभून्मुनीश्वर ॥२०
वयं त्रयो भवेशानाः समाना वरदर्षभाः ।
अस्मदंशभवास्तस्माद्भविष्यन्ति सुतास्त्रयः ॥२१

इसके अनन्तर परम विनीत ब्रह्मा के आत्मज अत्रि विस्मित होकर ब्रह्मा विष्णु और महेश इन देवों से हाथ जोड़ कर कहने लगे ॥१६॥ अत्रि मुनि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे महेश्वर ! आप लोग इस समस्त विश्व के परम पूज्य माने जाते हैं और इस जगत् के आप प्रभु ईश्वर तथा सृजन, पोषण और विनाश के करने वाले हैं ॥१७॥ मैंने तो अपने पुत्र की प्राप्ति के लिए केवल शिव का ही स्त्री के सहित तप में ध्यान स्मरण किया था क्योंकि शंकर संसार में ईश्वर विख्यात हैं ।१८। हे वरदाताओं में श्रेष्ठ ! अब आप तीनों ही देवता यहाँ किस कारण से आये हैं ? पहिले मेरे संशय को मिटा कर फिर वरदान देने की कृपा

करें ॥१९॥ हे मुने ! अत्रि के इन वचनों को सुनकर इसका उत्तर उन तीनों देवों ने यह दिया कि हे अत्रि मुने ! तुमने जो भी हृदय में संकल्प किया है वह उसी तरह से पूर्ण होगा ॥२०॥ तीनों देवों ने कहा—हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश समान वर देने वाले हैं। इसलिए हमारे अंशों से जन्म ग्रहण करने वाले तुम्हारे एक नहीं तीन पुत्र होंगे ॥२१॥

विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः।
इत्युक्त्वा ते त्रयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥२२
वरं लब्ध्वा मुनिः सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा।
युतोऽनुसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥२३
अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः ॥२४
विधेरंशाद्विधुजज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात्।
आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैः स एव हि ॥२५
विष्णोरंशात्स्त्रियां तस्यामत्रेर्दत्तो व्यजायत।
सन्यासपद्धतिर्येन वर्द्धिता परमा मुने ॥२६
दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तमः।
जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरधर्मप्रवर्तकः ॥२७
भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः।
चक्रे धर्मपरीक्षाञ्च बहूनां स दयापरः ॥२८

वे तीनों पुत्र ऐसे होंगे जो अपने माता-पिता की कीर्त्ति की वृद्धि करेंगे इतना कह कर वे तीनों देव प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने निवास स्थानों को चले गये।२२। हे मुनिवर ! इसके उपरान्त अत्रि मुनिजी इच्छित वर पाकर आनन्द अनसूया के सहित प्रसन्नचित्त से अपने स्थानको चले गये और ब्रह्मानन्द को पाने लगे ॥२३॥ इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु महेश अत्रि की पत्नी अनसूया के उदर से पुत्र रूप में परम प्रसन्न तथा विविध लीलाओं के रचने वाले उत्पन्न हुए ॥२४॥ अनसूया के गर्भ से अत्रि के द्वारा ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ जो कि देवों के द्वारा फेंके जाने पर फिर समुद्र से प्रकट हुआ था ॥२५॥ भगवान् विष्णु के अंग से अनसूया

में अत्रि के द्वारा दत्तात्रेय भगवान् उद्‌भूत हुए जिनने जगत् में संन्यास की विशाल पद्धति का प्रचार किया था ॥२६। हे मुनिवर ! भगवान् शंकर के अंश से अनसूया की कुक्षि से धर्म के श्रेष्ठ प्रवर्तक दुर्वासा उत्पन्न हुए ॥२७॥ भगवान् महेश्वर ने ब्रह्मतेज की वृद्धि करने वाले दुर्वासा के स्वरूप से समुत्पन्न होकर दयालुता के साथ बहुतों की धर्मनिष्ठा की जाँच की थी ॥२८॥

सूर्य्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत् ।
तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ॥२९
सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः ।
नियमं हि चकारासावेकादश्यां व्रते दृढम् ॥३०
एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम् ।
करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः ॥३१
ज्ञात्वा तन्नियमं तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तदन्तिकं गतिः शिष्यैर्बहुभिः शंकरांशजः ॥३२
पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् ।
कर्त्तुंव्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ॥३३
ततः स्नानार्थमगमद्दुर्वासाः शिष्यसंयुतः ।
विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥३४
धर्मविघ्नं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ।
जलं प्राश्य स्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया ॥३५

हे मुनीश्वर ! सूर्यवंश में समुत्पन्न परम धार्मिक राजा अम्बरीष की धर्म परीक्षा इन्हीं दुर्वासा मुनि ने की थी, उस चरित्र को मैं सुनाता हूँ। तुम उसे श्रवण करो ॥२९॥ राजा अम्बरीष विशाल सातद्वीप की भूमि का अधीश्वर था। एकादशी के दिन सविधि उपवास करने का उसका बहुत ही दृढ़ नियम था ॥३०॥ राजा अम्बरीष का ऐसा प्रण था कि मैं सदा एकादशी में उपवास करके द्वादशी में ही पारण किया करूँगा ॥३१॥ भगवान् शंकर के अंश से समुत्पन्न हुए

दुर्वासा मुनि ने राजा के इस दृढ़ संकल्प को जानकर अपने शिष्य-वर्ग के साथ राजा अम्बरीष के यहाँ पदार्पण किया ॥३२॥ अम्बरीष द्वादशी तिथि का थोड़ा सा ही शेष समय जानकर अपने एकादशी व्रत का पारण करने ही वाले थे कि वहाँ दुर्वासा पहुँच गये। राजा ने उनको निमन्त्रण दे दिया था ॥३३॥ राजा का निमन्त्रण स्वीकार कर दुर्वासा शिष्यों के सहित स्नानादि करने को चले गये। दुर्वासा मुनि ने राजा की दृढ़ता की परीक्षा करने के हेतु से वहाँ जान बूझकर अधिक विलम्ब कर दिया ॥३४॥ राजा ने अपने धर्म में विघ्न समझकर शास्त्र की आज्ञा के अनुसार जल ग्रहण कर पारण कर लिया और दुर्वासा की प्रतीक्षा में भोजन नहीं किया ॥३५॥

एतस्मिन्नंतरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः ।
कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥३६
चु क्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृषस्य सः ।
प्रोवाच वचनं तूग्रं स मुनिः शंकरांशजः ॥३७
मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतं त्वयाधम ।
दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥३८
इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो नृपं दग्धुं समद्यतः ।
समुत्तस्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम् ॥३९
प्रजज्वालाति तं चक्रंमुनिं दग्धुं सुदर्शनम् ।
शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥४०
एतस्मिन्नंतरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी ।
अम्बरीषं महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥४१
सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनाऽर्पितम् ।
शांत कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥४२

उसी समय मुनिराज दुर्वासा वहाँ आगये और राजा को भोजन किया हुआ समझकर उस पर परीक्षा के लिए अत्यधिक क्रोधित हुए ॥३६॥ शिव के अंशावतार दुर्वासा मुनि धर्म की जाँच करते हुए राजा से रोषावेश में आकर कठोर वचन कहने लगे ॥३७॥ दुर्वासा ने राजा

अम्बरीष से कहा—अरे अधम नृप तूने ! मुझे तो भोजन का निमन्त्रण दे दिया और मुझे भोजन कराने के पूर्व ही जलपान कर लिया। मैं तुझे इसका फल दिखाता हूँ क्योंकि मैं तुझ जैसे दुष्टों को दण्ड देने वाला हूँ ॥३८॥ क्रोध से अरुण नेत्र वाले ऋषि इतना कहकर राजा को भस्मीभूत करने को उद्यत हुए थे कि नृप के समीप स्थित सुदर्शन चक्र ने प्रकट होकर उसकी रक्षा की ॥३९॥ शिव की माया से मोहित होकर दुर्वासा को शिव का ही रूप समझ कर मुनि को दग्ध करने के लिए सुदर्शन चक्र प्रज्ज्वलित रूप वाला हो गया ॥४०॥ उसी समय परम वैष्णव और ब्राह्मणों के भक्त महात्मा अम्बरीष से बिना शरीर वाली व्योम वाणी ने कहा—हे नृप ! इस समय दुर्वासा को भस्म करने के लिये परम प्रज्ज्वलित शिव से ही प्राप्त भगवान् विष्णु के इस सुदर्शन चक्र को प्रार्थना द्वारा शान्त कर दो ॥४१–४२॥

दुर्वासाऽयं शिवः साक्षाद्यच्चक्रं हरयेऽर्पितम् ।
एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम ॥४३
तव धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः ।
शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥४४
इत्युक्त्वा च नभोवाणी विरराम मुनीश्वर ।
अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥४५
यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥४६
यदि नो भगवान्प्रीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः ।
सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ॥४७
इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धीः ॥४८

हे नृपश्रेष्ठ ! यह दुर्वासा मुनि साक्षात् महेश्वर ही हैं। इन्हीं ने इस सुदर्शन चक्र को विष्णु के लिए दिया था। इन दुर्वासा को कोई सामान्य मुनि मत समझो ॥४३॥ इस समय यह ऋषि तुम्हारी धर्म परीक्षा करने केलिए ही उपस्थित हुये हैं। अब तुम इनकी शरण में जाओ अन्यथा

प्रलय हो जायगा ॥४४॥ नन्दीश्वर ने कहा—हे मुनीश्वर ! इतना कहकर आकाशवाणी शान्त हो गई और राजा अम्बरीष ने शिव के अंश स्वरूप दुर्वासा की स्तुति करनी आरम्भ कर दिया ॥४५॥ राजा अम्बरीष ने प्रार्थना की—यदि आपने मुझे वरदान प्रदान किया है किम्बा मैंने अपना धर्मोचित अनुष्ठान किया है, यदि मेरा कुल देवगण और ब्राह्मण वर्ग का भक्त है तो मेरा विनयपूर्ण निवेदन है कि भगवान् विष्णु का अस्त्र सुदर्शन चक्र अब शान्त हो जावे ॥४६॥ यदि मेरे ऊपर मेरे भक्त वत्सल भगवान् परम प्रसन्न हैं तो मेरी प्रार्थना है कि यह सुदर्शन देव विशेष रूप से अब शान्त हो जाय ॥४७॥ नन्दीश्वर ने कहा—हे बुद्धिशालिन् ! इस तरह शिव के समक्ष में अम्बरीष के द्वारा स्तुति किये जाने पर शिव के द्वारा प्रदान किया हुआ सुदर्शन चक्र दुर्वासा को शिव का अंश समझ कर उसी समय शान्त हो गया ॥४८॥

अथाम्बरीषः स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम् ।
शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥४६
सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शंकरांशजा ।
भुक्त्वा तस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥५०
अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितं मुने ।
प्रोक्तमन्यच्चरित्रं त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥५१
पुनर्दाशरथेश्चक्रे परीक्षां नियमेन वै ।
मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥५२
तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ।
तं तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं प्रणवशान्मुने ॥५३
सा कथा विहिता लोके मुनिभिर्बहुधोदितः ।
नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥५४
नियमं सुदृढ़ दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ।
दुर्वासाः सुप्रसन्नात्मा वरं तस्मै प्रदत्तवान् ॥५५
श्रीकृष्णनियमस्थापि परीक्षां स चकार ह ।
तां शृणुत्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम ॥५६

राजा ने इसके अनन्तर अपनी परीक्षा करने के लिए ही समागत दुर्वासा मुनि को भगवान् शिव का अंश समझ कर उन्हें सादर प्रणाम किया ॥४६॥ उस समय शिव के अंश से उत्पन्न होने वाले दुर्वासा अम्बरीष पर बहुत अधिक प्रसन्न हुए और उसके भोजन को स्वीकार कर अभीष्ट स्थान को वापिस चले गये ॥५०॥ हे मुनीश्वर ! मैंने अभी तो यह अम्बरीष की परीक्षा करने से सम्बन्धित दुर्वासा के चरित्र का वर्णन किया है। अब इनके अन्य चरित्र को मैं सुनाता हूँ। उसे श्रवण करो ॥५१॥ हे मुने ! इसके अनन्तर मुनिरूप को धारण करने वाले दुर्वासा ने भगवान् श्रीराम की परीक्षा करने का निश्चय किया। श्रीराम ने कालरूप मुनि से यह नियम निश्चित किया था कि हमारे आपके सम्वाद के समय में कोई भी न आने पावेगा ॥५२॥ दुर्वासा मुनि ने यह जानकर श्रीराम का नियम भंग करने के लिये हठ करके उनके समीप में लक्ष्मण को भेज दिया था और श्रीराम ने अपने किये प्रण के वशीभूत होने के कारण शीघ्र ही अपने भाई लक्ष्मण का परित्याग कर दिया ॥५३॥ यह कथा बहुधा मुनिगण के द्वारा कही हुई है और परम प्रसिद्ध भी है। इसे प्रायः सभी विद्वान भलीभाँति जानते हैं। अतएव विस्तार से मैं इसका वर्णन नहीं कर रहा हूँ ॥५४॥ श्रीरामचन्द्रजी के अत्यन्त दृढ़ नियम को देखकर महर्षि दुर्वासा को बहुत ही प्रसन्नता हुई और इसके लिये श्रीराघवेन्द्र को वरदान भी दिया ॥५५॥ हे मुनिवर ! इसी प्रकार दुर्वासा मुनि ने एकबार श्रीकृष्ण के नियम की परीक्षा की थी। मैं उस कथा को आपको सुनाता हूँ। तुम श्रवण करो ॥५६॥

ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत् ।
धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥५७
हत्वा दुष्टान्महापापान्ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ।
ररक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥५८
ब्रह्मभक्ति चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः ।
नित्यं हि भोजयातास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥५६
ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात ।

संद्रष्टुकामः स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ।।६०
रुक्मिणीसहितं कृष्णं मग्नं कृत्वा रथे स्वयम् ।
संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ।।६१
मुनी रथात्समुत्तीर्य्य दृष्ट्वा तां दृढतां पराम् ।
तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरं ददौ ।।६२

ब्रह्माजी की प्रार्थना पर भगवान् विष्णु ने पृथ्वी का भार हल्का करने और साधु पुरुषों की रक्षा करने के लिए वसुदेव के पुत्र होकर अवतार लिया था ।।५७।। श्रीकृष्ण वासुदेव ने महान् पापी दुरात्माओं तथा ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले खलों का संहार कर समस्त साधु ब्राह्मणों का त्राण किया ।।५८।। वासुदेव श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के अत्यन्त भक्त थे और अनेकों ब्राह्मणों को प्रतिदिन सुन्दर स्वादिष्ट रस वाले भोजन कराया करते थे ।।५९।। हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण ब्राह्मणों की विशेष भक्ति करने वाले हैं ऐसी उनकी ख्याति सुन उनकी भी परीक्षा करने के उद्देश्य से दुर्वासा मुनि उनके पास पहुँचे ।।६०।। रुक्मिणी के सहित श्रीकृष्ण को अपने रथ में छोड़कर उसमें बैठ परम प्रसन्न होकर कहने लगे ।।६१।। दुर्वासा रथ से उतर आये और श्रीकृष्ण की इस अत्यन्त दृढ़ता से बहुत प्रसन्न होकर उनको वज्र तुल्य अंग हो जाने का वरदान मुनि ने दिया था ।।६२।।

द्युनद्यामोकदा स्नानं कुर्वन्नग्नो वभूव ह ।
लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासाः कौतुकी मुने ।।६३
तज्ज्ञात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात् ।
तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वांचलदानतः ।।६४
तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः ।
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ।।६५
द्रौपद्यै च वरं प्रादात्तश्चलविवर्द्धनम् ।
पाण्डवान्सुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ।।६६
सडिम्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ ।
दत्त्वा निदेशं च हरेर्नाशयामास स प्रभुः ।।६७

ब्रह्मतेजोविशेषेण स्थापयामास भूतले ।
संन्यासपद्धतिञ्चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ॥६८
बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च ।
ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥६९
इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितं बहु ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शृण्वतः सर्वकामदम् ॥७०
य इदं शृणुयाद्भक्त्या दुर्वासश्चरितं मुदा ।
श्रावयेद्वा परान्यश्च स सुखीह परत्र च ॥७१

हे मुने ! एकबार अत्यन्त कौतुक करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासा बिल्कुल नग्न होकर भागीरथी में स्नान करने के कारण बहुत लज्जित हुए ॥६३॥ उस समय द्रौपदी भी वहाँ स्नान कर रही थी । इसने मुनि को लज्जायुक्त देखकर उन्हें अपना वस्त्र फाड़कर सादर समर्पित किया और उनकी लज्जा दूर की ॥६४॥ उस समय जल के बहाव में बहकर आते हुए वस्त्र को प्राप्त कर मुनि ने अपने योग्य अंग का आच्छादान किया और इस उपकार के लिए द्रोपदी पर बहुत प्रसन्न हुए ॥६५॥ दुर्वासा ने द्रौपदी को उसके वस्त्र की वृद्धि हो जाने का वरदान दिया । इस वरदान के प्रभाव से द्रौपदी ने पांडवों को सुखी बनाया था ॥६६॥ हंसडिम्भ नामक एक राजा था । वह बहुत दुष्ट और परम स्वाभिमानी था । इसको भगवान् विष्णु का सन्देश देकर महर्षि दुर्वासा ने नष्ट कर दिया ॥६७॥ दुर्वासा ने ब्रह्म तेज का विस्तार भूमि पर विशेष रूप से किया गया था और शास्त्रों के विधान के अनुकूल सांसारिक पद्धति का पूर्णतया प्रसार किया ॥६८॥ मुनि ने अपने सुन्दर उपदेशों द्वारा ज्ञान देकर अनेकों का उद्धार एवं विशेष रूप से मुक्त कर दिया ॥६९॥ दुर्वासा मुनि के इस प्रकार से अनेक अत्यन्त अद्भुत चरित्र हैं और सुनने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं ॥७०॥ जो पुरुष दुर्वासा मुनि के इस चरित्र को भक्ति के साथ आनन्दपूर्वक सुनता या सुनाता है वह इस लोक और परलोक में दोनों जगह सुख प्राप्त किया करता है ॥७१॥

।। दधीचि का अस्थिदान ।।

एकदा निर्जराः सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर ।
वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ।।१
स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ।
निः क्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः ।।२
तदा सर्वे सुराः सेन्द्रा वध्यमानास्तथर्षयः ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ।।३
तच्छ्रुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वं शशंस तत्त्वेन त्वष्ट श्चैव चिकीर्षितम् ।।४
भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्राऽयं तपसाऽसुरः ।
वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ।।५
अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा ।
तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ।।६
महामुनिर्दधीचिर्यः स तपस्वी जितेन्द्रियः ।
लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्ववरम्पुरा ।।७

नन्दीश्वर ने कहा हे मुनिराज ! एकबार इन्द्र आदि समस्त देवगण वृत्रासुर की सहायता करने वाले दैत्यों से युद्ध में पराजित हो गये और सब ने अपने अस्त्रों को दधीचि मुनि के आश्रम में फेंक दिया था ।।१—२।। उस समय समस्त देववृन्द्र इन्द्र को साथ लेकर और अत्यन्त पीड़ित ऋषि लोग एकत्रित होकर शीघ्र ही ब्रह्मा जी के पास गए और सब ने ही अपने दुःख की ब्रह्मा जी से प्रार्थना की ।।३।। समस्त जगत् के पितामह ब्रह्मा जी देवगण के वचनों को श्रवण कर त्वष्टा द्वारा करने वाली इच्छा को तात्विक रूप से देवों को कहने लगे ।।४।। ब्रह्मा जी ने कहा—वृत्रासुर महान् तेजस्वी और समस्त दैत्यों का स्वामी है। इसको त्वष्टा दैत्य ने तुम सब को मारने के लिए ही तपस्ता करके पैदा किया है ।।५।। हे प्राज्ञ ! अब जिस रीति से इसका वध हो सकता है वही उपाय धर्म के हित के विचार से मैं तुम को बतलाता हूँ। तुम सब सुन

लो ॥६॥ पहिले किसी समय में परम तपस्वी-जितेन्द्रिय महामुनि दधीचि ऋषि ने भगवान् महेश्वर की आराधना से वज्र के समान हड्डी वाला हो जाने का वरदान प्राप्त किया है ॥७॥

तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः ।
निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ॥८
तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः ।
अगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥९
दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ।
ननाम साञ्जलिर्नम्रः सगुरुः सामरश्चतम् ॥१०
तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ।
स्वपत्नीं प्रेषयामास सुवर्चां स्वाश्रमान्तरम् ॥११
ततः सदेवराजश्चसामरः स्वार्थसाधकः ।
अर्थशास्त्रो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ॥१२
त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयं देवास्तथर्षयः ।
शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥१३
स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि ।
अस्थ्ना ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्रुहम् ॥१४

सो अब तुम किसी प्रकार से उनकी अस्थियों की याचना करो । वे निस्सन्देह अस्थियाँ दे देंगे । उन से दण्ड वज्र की रचना कर वृत्रासुर का बिना किसी सन्देह के वध करो ॥८॥ नन्दीश्वर ने कहा—ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुनकर गुरु के सहित तथा समस्त देवों के सहित इन्द्र ने मुनि के आश्रम के लिये प्रस्थान कर दिया ॥९॥ वहाँ अपनी सुवर्चा के साथ विराजमान दधीचि मुनि को देखकर सब ने आदरपूर्वक हाथ जोड़ कर प्रणाम किया ॥१०॥ उस वक्त विद्वद्वर दधीचि ने उन के हार्दिक अभिप्राय को जान लिया और सुवर्चा को आश्रम के अन्दर भेज दिया ॥११॥ उस समय परम स्वार्थी देव स्वामी इन्द्र अर्थशास्त्र में परायण होकर मुनि से प्रार्थना करने लगा ॥१२॥ देवराज इन्द्र ने कहा—हम सब देवगण तथा ऋषि वृन्द त्वष्टा के द्वारा सताये हुए परम

दुःखित होकर अति दानशील महाशिवभक्त और शरण में आये हुओं पर दया करने वाले आपकी शरण में प्राप्त हुए हैं ॥१३॥ हे विप्रवर ! आप अपनी वज्र तुल्य अस्थियाँ हमको प्रदान करें जिनसे हम वज्र दण्ड निर्माण कर देवशत्रु इस वृत्रासुर का वध कर सकें ॥१४॥

इत्युक्तस्तेन स मनिः परोपकरणे रतः ।
ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विससर्जकलेवरम् ॥१५
ब्रह्मलोक गतः सद्यः स मुनिर्ध्वस्तबन्धनः ।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागता ॥१६
अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ।
अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्र निर्दिदेश तदस्थिभिः ॥१७
विश्वकर्मा तदाज्ञप्तश्चवलृपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः ।
तदस्थिभिर्वज्रामयैः सुदृढैः शिववर्चसा ॥१८
तस्य वंशोद्भवं वज्रं शरो ब्रह्मशिरोस्तथा ।
अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥१९
तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववचसा ।
वृत्रमभ्यद्रवत्क्रुद्धो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥२०
ततः शक्रः सुसन्नद्धस्तेन वज्रेण सं द्रुतम ।
उच्चकर्त शिरो वार्त्रं गिरिश्रृंगमिवोजसा ॥२१
तदा समुत्सवस्नात बभूव त्रिदिवौकसाम् ।
तुष्टुवुर्निर्जराः शक्रम्पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥२२

देवों की इस प्रार्थना को सुनते ही परोपकार में तत्पर दधीचि मुनि ने भगवान् शंकर के चरणों का ध्यान करके तुरन्त ही अपने शरीर का त्याग कर दिया ॥१५॥ दधीचि मुनि समस्त बन्धनों से विमुक्त होकर शीघ्र हो ब्रह्मलोक में गये । उस समय आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी और सब को बहुत अधिक आश्चर्य हुआ ॥१६॥ उसी समय महेन्द्र ने कामधेनु को आज्ञा देकर ऋषि की सब अस्थियाँ निकलवा लीं और उनसे वज्रदण्ड का निर्माण करने के लिये त्वष्टा को आदेश दे दिया ॥१७॥ विश्वकर्मा ने आज्ञा प्राप्त होते ही शिव के तेज से परिपूर्ण परम पुष्ट

वज्रमय अस्त्र उन अस्थियों से बना दिया ।।१८।। उसके वंश से समुत्पन्न हुआ वज्र तथा ब्रह्मा के शिर का त्राण हुआ और उन अस्थियों से अपने और पराये अस्त्र बनाये गए ।।१९।। हे मुने ! तब फिर इन्द्रदेव शिव के तेज से सुसम्पन्न होकर उस वज्र को उठाते हुये क्रोध में भरकर शिव के ही समान वृत्रासुर पर टूट पड़ा ।।२०।। इन्द्र ने वलपूर्वक उस वज्र के द्वारा शीघ्र ही वृत्रासुर के मस्तक को पर्वत शिखर के तुल्य काटकर फैंक दिया ।।२१।। हे तात ! वृत्रासुर का वध हो जाने पर देवगण अत्यन्त सन्तुष्ट होकर महाआनन्दोत्सव मनाने लगे और इन्द्रदेव के ऊपर अन्तरिक्ष से पुष्पों की वर्षा हुई ।।२२।।

।। पिप्पलाद का विवाह और शनि पीड़ा निवारण ।।

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः ।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः ।।१
येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना ।
दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारिणीम् ।।२
षोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा ।
तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः ।।३
अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित् ।
तेषां नृणां तदा स स्याद्भस्मसान्न हि संशयः ।।४
इति तद्भयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः ।
तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद्ग्रहसत्तमः ।।५
इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुनेः ।
कथितं सुचरित्रं ते सर्वकामफलप्रदम् ।।६
गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामनिः ।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशतन्ति स्मृतास्त्रयः ।।७

यह महाप्रभु महेश्वर का पिप्पलाद के स्वरूप में लीलावतार हुआ क्योंकि वह नाना प्रकार की लीलाओं के करने वाला था ।।१।। दयालु पिप्पलाद ने संसार में किसी से भी निवारण न करने के योग्य शनि की

पीड़ा को देखते हुए परम प्रीति के साथ मनुष्य को वरदान दिया था ।२। पिप्पलाद ने वर यह दिया कि जन्म से आरम्भ कर सोलह वर्ष की अवस्था तक शिव की भक्ति करने वालों की शनैश्चर की कोई भी पीड़ा नहीं सतायेगी, ऐसा मेरा वचन सत्य है ॥३॥ यदि मेरे वचन को न मानकर शनि किसी को भी पीड़ा देगा तो वह स्वयं भस्म हो जायगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥४॥ हे तात ! इस तरह इनके भय से विकृत होकर शनिग्रह उनको कभी भी भूलकर कोई पीड़ा नहीं दिया करता है ॥५॥ हे मुनिवर ! मैंने यह पिप्पलाद भगवान् की परम सुन्दर मानव लीला एवं रमणीय चरित्र तुमको सुना दिया है। यह समस्त कामनाओं के फल को प्रदान करने वाला है ॥६॥ गधि, कौशिक और पिप्पलाद ये तोनों ही महामुनि हैं और शनिग्रह द्वारा उत्पन्न पीड़ा का उन्मूलन करने वाले होते हैं ॥७॥

॥ शिव का ब्रह्मचारी रूप में अवतार ॥

सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोर्जटिलाह्वं सुपावनम् ॥१
पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देह पितुमखे ।
स्वपित्राऽनादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ॥२
सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेपे सुविमलं तपः ।
शकरं पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥३
तत्तपः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्प्रैषयच्छिवः ।
तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ॥४
ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ।
तस्याः सुयत्नतो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥५
तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्त च निवेद्य तत् ।
तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वर्लोकं जग्मुरादरात् ॥६
गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शंकरः स्वयम् ।
परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः ॥७

नन्दीश्वर ने कहा—हे सनत्कुमार ! अब आप सर्वत्र व्यापक रहने

वाले परमात्मा शिव के जटिल नाम वाले परम पवित्र अवतार की कथा प्रीतिपूर्वक श्रवण करें ॥१॥ पहिले सती नाम वाली दक्ष प्रजापति की पुत्री ने अपने ही पिता के द्वारा अनादर प्राप्त करने पर पिता के यहाँ पर ही यज्ञस्थली में अपने शरीर का त्याग कर दिया और पुनः हिमवान् पर्वतराज के द्वारा उनकी पत्नी मेना के कुक्षि से उत्पन्न हुई थी ॥२॥ वह पार्वती अपने स्वामी शंकर को प्राप्त करने की इच्छा से सहेलियों के सहित घोर निर्जन एवं परम सघन वन में जाकर बहुत ही निर्मल तथा उग्र तपस्या करने में परायण हो गई ॥३॥ उस समय विविध प्रकार की लीला करने में प्रवीण भगवान् शिव ने पार्वती की तपश्चर्या का परीक्षण करने के लिये उस तपोवन में सप्त ऋषियों को भेजा था ॥४॥ वे ऋषि शिवाज्ञा को स्वीकार कर वहाँ पहुंचे और बहुत ही यत्नों द्वारा पार्वती की परीक्षा करने लगे किन्तु वास्तविक रूप से उस कार्य में वे समर्थ एवं सफल न हो सके ॥५॥ इसके अनन्तर वे सप्तऋषि वापिस शिव के पास लौट आये और प्रणामपूर्वक समस्त वृत्तान्त शिव को सुना दिया तथा शंकर की आज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानों को चले. गये ॥६॥ उत्पत्तिकर्त्ता प्रभु शिव ने उन ऋषियों के यथास्थान चले जाने के अनन्तर स्वयं ही पार्वती के मनोभाव की जाँच करने की इच्छा की ॥७॥

सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ।
ब्रह्मचर्य्यस्वरूपोऽभूत्तदाऽद्भुततरः प्रभुः ॥८
अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ।
प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ॥९
धृत्वैवं जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् ।
अतिप्रीतियुतः शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः ॥१०
तत्रापश्यत्स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम् ।
वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम् ॥११
शंभुर्निरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान् ।
उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्मुखो भक्तवत्सलः ॥१२

आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाऽद्भुतम् ।
अंगेषु लोमशं शांत दण्डचर्मसमन्वितम् ।१३
ब्रह्मचर्य्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलुम् ।
अपूजयत्परप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः ।१४

तब परम प्रसन्न चित्त तपस्वी प्रभु शङ्कर ने अपनी इच्छा के अनुसार शान्तिमय एक अति अद्भुत ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण किया ।८। बहुत वृद्ध ब्राह्मण का शरीर धारण करते हुए अपने तेज के प्रकाश से प्रज्ज्वलित तथा मन से प्रसन्न दण्ड तथा छत्र धारण कर बहुत ही उज्ज्वल वेष के धारी हुए ।९। ऐसे जटिल स्वरूप को धारण कर भक्त-वत्सल-कल्याण करने वाले शम्भु प्रीतिपूर्वक पार्वती के निकट तपोवन में गये ।१०। उस तपोवन में तपस्विनी पार्वती को वेदी के ऊपर विराजमान सखियों से घिरी हुई परम शुद्ध चन्द्रमा की कला के तुल्य संस्थित भगवान् शिव ने देखा ।११। एक ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण करने वाले भक्तों पर प्रेम करने वाले भगवान् महेश्वर अत्यन्त उत्कण्ठा रखते हुए वहाँ पार्वती को देखकर उसके समीप में पहुँच गये ।१२। उस समय जगदम्बा पार्वती ने अद्भुत तेजस्वी, रामयुक्त अङ्गों वाले, परम शान्त रूपधारी, मृग-चर्म और दण्ड से युक्त वहाँ आगमन करते हुए ब्राह्मण का दर्शन किया ।१३। पार्वती ने उस ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य से युक्त-वृद्ध और जटा एवं कमण्डलु धारण किये हुए देखकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अर्चना की और समस्त सामग्री के द्वारा उसका समुचित सत्कार किया ।१४।

ततः सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा ।
कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात् ।१५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः ।
इदं वनं भासदति वद वेदविदां वर ।१६
इति पृष्ठस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
प्रत्युवाच द्रुतं प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया ।१७
अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजश्च वै ।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः ।१८

इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी च शङ्करो भक्तवत्सलः ।
तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन्रूपमात्मनः ।१६।
किं ब्रवीमि महादेवि कथनीयं न विद्यते ।
महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत् ।२०
नवे वयसि सद्भोगसाधने सुखकारणे ।
महोपचारसद्भोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि ।२१
का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने ।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः ।२२

इसके अनन्तर पूजा में परायण होते हुए पार्वती ने आदरपूर्वक सादर उन समागत ब्रह्मचारी से कुशल प्रश्न किया ।१५। पार्वती ने कहा—हे वेदज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! आप इस ब्रह्मचारी के स्वरूप में कौन हैं और इस समय कहाँ से पदार्पण किया है, जोकि इस वन को प्रकाश वाला कर रहे हो ? ।१६। नन्दीश्वर ने कहा—इस रीति से पार्वती के द्वारा प्रश्न किये जाने पर उस ब्रह्मचारी ब्राह्मण ने पार्वती की परीक्षा करने के कारण से शीघ्र ही उत्तर दिया ।१७। ब्रह्मचारी ने कहा—मैं स्वेच्छा से विचरण करने वाला तपस्वी तथा ब्रह्मचारी ब्राह्मण हूँ और दूसरों को सुखी बनाकर उनका उपकार किया करता हूँ ।१८। नन्दीश्वर ने कहा—इस तरह से भगवान् शङ्कर ने भक्तवत्सल ब्रह्मचारी के स्वरूप में अपने सही रूप को छिपाकर पार्वती के समीप में स्थिति की थी ।१६। उस समय ब्रह्मचारी ने पार्वती से कहा—हे देवि ! क्या बतलाऊँ ? कहने के योग्य बात नहीं है । मुझे यहाँ पर बहुत ही अनर्थपूर्ण महान् विकृत वृत्तान्त दिखाई दे रहा है ।२०। आप इस अपनी नई अवस्था में अत्यन्त सुन्दर एवं सुकोमल इस सुखोपभोगों के योग्य शरीर से महान् सुखोपचारों का त्याग कर व्यर्थ ही तपस्या कर रही हैं ।२४। क्या आप यह बता सकेंगी कि आप कौन हैं और किस उद्देश्य को लेकर इस भयावह निर्जन वन में जितेन्द्रियों के तुल्य कठिन तप कर रही हो ? ।२२।

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी ।
उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम् ।२३

शृणु विप्र ब्रह्मचारिन्मद्वृत्तमखिलं मुने ।
जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे ।२४
पूर्वं दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी ।
योगेन त्यक्तदेहाऽहं तातेन पतिनिन्दिना ।२५
अत्र जन्मनि संप्राप्तः सुपुण्येन येन शिवो द्विज ।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह ।२६
प्रयाते शङ्करे तापाद्व्रीडिताऽहं पितुर्गृहात् ।
आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता ।२७
मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः ।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करो मया ।२८

नन्दीश्वर ने कहा—इस प्रकार से ब्रह्मचारी के वेषधारी शङ्कर के इन वचनों को सुनकर पार्वती ने मुस्कराते हुए बड़े ही प्रेम के साथ ब्रह्मचारी को उत्तर देते हुए श्रेष्ठ वचन कहे ।२३। पार्वती ने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! हे मुनिवर ! आप जब सभी जानना चाहते हैं तो मैं अपना सभी पूरा हाल बताती हूँ। इस समय तो मेरे इस शरीर का जन्म गिरिराज हिमवान् के घर में हुआ है ।२४। इसके पूर्व मैं प्रजापति दक्ष की आत्मजा थी और भगवान् शंकर की पत्नी हुई थी । मेरे पतिदेव शिव की बुराई करने वाले पिता के यहाँ पर ही योग द्वारा अपने शरीर का त्याग मैंने कर दिया था ।२५। अब हे विप्रवर ! इस जन्म में परम महान् पुण्य से प्राप्त भगवान् शिव मुझे त्यागकर और कामदेव को भस्म करके चले गये हैं ।२६। शिव के त्याग से अति लज्जित होकर बहुत ही दुःखित मैं अपने पिता के घर को छोड़कर गुरु के वचनोपदेश से नियम लेकर इस वन में शिव-प्राप्ति के लिए यह तप कर रही हूँ ।२७। यह मेरी तपस्या मन-वचन और कर्म के द्वारा साक्षात् शिव स्वरूप पतिदेव को पाने के लिए ही है । मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है । इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है । इसके लिये मेरे साक्षी साक्षात् शिव ही है ।२८।

जानामि दुर्ल्लभं वस्तु कथं प्राप्य मया भवेत् ।
तथापि मनसौत्सुक्यात्तप्यते मे तपोऽधुना ।२९

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्णुं ब्रह्माणमप्यहम् ।
पतिम्पिनाकरूपाणि वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः ।३०
इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम् ।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत ।३१
हिमाचलसुते देव का बुद्धिः स्वीकृता त्वया ।
रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलं तपः ।३२
जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणुत्व प्रवदामि ते ।
वृषध्वजः स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाधरः ।३३
एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः ।
तस्मात्वं तेन रुद्रेण मनो योक्तुं न चार्हसि ।३४
सर्वं विरुद्धरूपादि तव देवि हरस्य च ।
मह्यं न रोचते ह्येतद्यदीच्छसि तथा कुरु ।३५

मैं खूब अच्छी तरह समझती हूं कि वह परम दुर्लभ वस्तु मुझे कैसे प्राप्त हो सकेगी, तो भी मेरे मन में उत्कण्ठा है और मैं उसी के लिए यह तपश्चर्या कर रही हूँ ।२९। मैं इन्द्र आदि समस्त देव, ब्रह्मा और विष्णु सबको त्याग कर केवल पिनाकधारी शिव को ही अपना पूज्य पति प्राप्त करने की उत्कट इच्छा रखती हूँ ।३०। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! उस समय पार्वती के परम निश्चय से परिपूर्ण इन वचनों को सुनकर जटिल रूपधारी रुद्रदेव हँसकर कहने लगे ।३१। जटिल ने कहा—हे हिमवान् की पुत्रि ! हे देवि ! तूने यह क्या अपनी बुद्धि बनाई है कि समस्त ऐश्वर्य वाले देवों को छोड़कर केवल एक शिव को ही अपना पति बनाने के लिये ऐसी कठोर तपस्या कर रही हो ? ।३२। हे देवि ! मैं भली भाँति उस रुद्र को जानता हूँ । वह रुद्र बैल पर तो सदा सवारी किया करता है और बहुत विकृत आत्मा वाला तथा जटा-जूट धारण करके रहा करता है ।३३। वह तो हमेशा अकेला ही रहता है और परम विरक्त है । इसलिए तुझको ऐसे वैरागी में अपना मन लगाना उचित नहीं जान पड़ता है ।३४। हे भगवति ! शिव का स्वरूप आदि सभी कुछ

तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के बहुत विपरीत है। मुझे तो बिल्कुल भी अच्छा नहीं प्रतीत होता है। आगे तुम्हारी जो भी इच्छा हो वही करो।३५।

इत्युक्त्वा च पुनः रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
निनिन्द बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम् ।३६
तच्छ्रुत्वा पार्वती देवी विप्रवाक्यं दुरासदम्।
प्रत्युवाच महाक्रुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ।३७
एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद्वध्यो भविष्यति।
परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना ।३८
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्वं धूर्त आगतः।
शिवनिन्दा कृता मूढ़ त्वया मन्युरभून्मम ।३९
शिवं त्वं च न जानासि शिवात्वं हि बहिर्मुखः।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताऽभवम् ।४०

नन्दीश्वर ने कहा—इतना कहने के बाद भी ब्रह्मचारी के वेष में उपस्थित शिव ने प्रार्वती की और अधिक परीक्षा करने की इच्छा से अनेक प्रकार से अपनी खूब निन्दा से भरी बातें कहीं।३६। तब तो सर्वथा न सहन करने के योग्य निन्दापूर्ण ब्राह्मण के वचनों को सुनकर पार्वती को बड़ा भारी क्रोध आ गया अपने अभीष्ट देव शिव की निन्दा में तत्पर ब्राह्मण से पार्वती कहने लगीं।३७। हे ब्राह्मण! मैं तेरी इन बातों से इस निर्णय पर पहुँच गई हूँ कि तू मार देने के योग्य है किन्तु अब मैं बहुत कुछ विचार करके यह भी समझ गई हूँ कि इस समय तू अवध्य है।३८। हे मूर्ख! ऐसा मालूम होता है कि तू कोई बड़ा धूर्त है और ब्रह्मचारी बनकर यहाँ आ गया है। इस समय तूने भगवान् शिव की निन्दा की है अतएव इससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हो गया।३९। तू शिव के सच्चे स्वरूप को बिल्कुल नहीं जानता है और शङ्कर से सर्वथा बहिर्मुख है। मैंने इस समय तेरी अर्चना एक ब्राह्मण समझकर की, इसका भी मेरे मन में बहुत ही सन्ताप हो रहा है।४०।

रेरे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शङ्करम्।
निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ।४१

यथा तथा भवेद्रुद्रो मायया बहुरूपवान् ।
मामाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सताम्प्रियः ।४२
इत्युक्त्वास्ते शिवा देवी शिवतत्वं जगाद सा ।
यत्र ब्रह्मतपा द्ररुः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ।४३
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः ।
पुनर्वचनमादातं यावदेव प्रचक्रमे ।४४
प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम् ।
शिवासक्तमनोवृत्ति शिवनिन्दापराङ्मुखी ।४५
वारणीयः प्रयत्नेन सख्ययं हि द्विजाधमः ।
पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति ।४६
न केवलं भवेत्पापं निन्दातुः शिवस्य हि ।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्स भवेदिह ।४७

अरे दुष्ट ! तूने यह बिल्कुल असत्य ही कहा था कि मैं शिव को जानता हूँ । मैं कहती हूँ कि तू शिव को नहीं जानता है। शिव तो सर्वोपरि सबके बड़े स्वामी हैं ।४१। जैसे-तैसे कुछ भी हों—रुद्रदेव अपनी माया से बहुत से रूप वाले हैं । मैं खूब समझती हूँ कि वे मनोरथों को पूर्ण करने वाले विकारों से रहित और सत्पुरुषों के परम प्रिय हैं ।४२। नन्दीश्वर ने कहा—यह कहकर फिर पार्वती ने शिव के उस तत्व का वर्णन करना आरम्भ किया जिसमें ब्रह्मरूप से रुद्रदेव निर्गुण और अविनाशी कहे जाते हैं ।४३। यह पार्वती के वचन सुनकर वह ब्रह्मचारी वेषधारी ब्राह्मण जैसे ही कुछ कहने को प्रस्तुत हुआ वैसे ही उस समय में शिव के चरणों में आसक्त मन वाली शिव की निन्दा से रहित होकर अपनी सखी विजया से पार्वती शीघ्रता से कहने लगी ।४४-४५। पार्वती ने कहा—हे सखि ! यह नीच ब्राह्मण यहाँ से हटा देने के योग्य है । यह फिर भी कुछ कहना चाहता है । मैं चाहती हूँ कि आगे और कुछ शिव की निन्दा करने का अवसर इसे नहीं देना चाहिये ।४६। भगवान् शिव की निन्दा करने वाला तो महापापी होता ही है, जो उस निन्दा को केवल कानों से सुनता है उसे भी पाप का भागी होना पड़ता है ।४७।

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः।
ब्राह्मणश्चेत्य वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थालम्द्र्तम् ।४८
अयं दुष्टः पुनर्निन्दा करिष्यति शिवस्य हि।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ।४९
स्थलतेतद्द्रुत हित्वा यास्यामोऽन्यत्रमाचिरम्।
यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ।५०
इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने।
असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ।५१
कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा।
दर्शयित्वा शवायै तामुवाचावाङ्मुखीं शिवः ।५२
कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया शिवे।
मया परीक्षितासित्वं दृढ़भक्तासि मेऽनघे ।५३
ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदोयकम्।
तवोपकण्ठमागत्य प्रोवाचं विविधं वचः ।५४

जो शिव के सेवक हैं उनके द्वारा शिव की निन्दा करने वाले का वध कर देना चाहिए। हाँ, यदि दुर्भाग्य से ब्राह्मण जाति का हो तो उसे छोड़कर उस स्थान से जहाँ शिव की निन्दा होती हो अन्यत्र ही स्वयं शीघ्र चले जाना चाहिये ।४८। यह दुरात्मा फिर शिव की निन्दा करेगा क्योंकि यह विप्र है इसलिए वध करने योग्य नहीं है। यह त्याग देने के योग्य और सर्वथा दर्शन करने के लायक नहीं है ।४९। मैं अब इस स्थान का त्याग कर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान पर जाना चाहती हूँ। जिससे फिर इस मूर्ख के साथ भाषण करने का कोई अवसर ही न आवे ।५०। नन्दीश्वर ने कहा—हे मुने ! इतना कह कर पार्वती ने ज्यों ही स्थिति का त्याग करना चाहा वैसे ही भगवान् शिव ने उसके वस्त्र को धारण कर लिया ।५१। पार्वती जिस स्वरूप का ध्यान किया करती थी शिवजी ने उसी स्वरूप को धारण कर पार्वती को दर्शन दिया और भूमि की ओर नीचे देखती हुई पार्वती से बोले ।५२। शिवजी ने कहा—हे शिवे ! हे अनघे ! अब तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो ? तुम अब

मेरे त्याग करने योग्य नहीं हो। मैंने तुम्हारी अच्छी तरह परीक्षा कर ली है कि तुम्हारी मुझ में बहुत ही दृढ़ भक्ति है ।५३। मैं इसीलिए यह एक ब्रह्मचारी का रूप धारण कर तुम्हारे समीप में आया और अनेक वचन भी कहे ।५४।

प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः ।
चित्तेप्सितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ।५५
ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत् ।
प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जाऽधोमुखी शिवा ।५६
यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि ।
पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तः शिवया शिवः ।५७
गृहीत्वा विधिवत्पाणि कैलासं स तया ययौ ।
पति तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं चकार सा ।५८
इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः ।
शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः ।५९

हे पार्वती ! मैं तेरी अनुपम दृढ़ भक्ति से विशेष रूप से प्रसन्न हुआ हूँ। अब तू अपने मनचाहे वर को माँग ले। तुझे अब कोई भी अदेय वस्तु नहीं है ।५५। परम प्रसन्न पार्वती शिव के दिव्य स्वरूप का दर्शन कर लज्जा से नीचे की ओर अपना मुख करती हुई प्रेमपूर्वक शिव से प्रार्थना करने लगी ।५६। पार्बती ने कहा—हे देवेश ! यदि परम प्रसन्न होकर मुझ पर कृपा करना चाहते हैं तो आप मुझको अङ्गीकार कीजिए ।५७। उस समय शिवजी विधि-विधान के साथ पार्वती का पाणिग्रहण कर उन्हें अपने सङ्ग कैलाश पर्वत पर ले गये। पार्वती ने अपने अभीष्ट पति को पाकर देवों के कार्य सम्पन्न किये ।५८। हे तात ! ब्रह्मचारी का स्वरूप धारण कर पार्वती की परीक्षा करने वाले शिवजी के जटिल अवतार का वर्णन मैंने किया है ।५९।

।। प्रथम भाग समाप्त ।।

प्रकाशक :
डॉ० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

★

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

सर्वाधिकार सुरक्षित

★

संशोधित जनोपयोगी संस्करण
१९७२

★

मुद्रक :
हर्ष गुप्त
राष्ट्रीय प्रेस, मथुरा।

★

12/50

मूल्य [illegible] रुपये पचास पैसे

LIBRARY
UNIVERSITY OF ALBERTA

श्री शिवपुराण

(प्रथम खण्ड)

(सरल भाषानुवाद जनोपयोगी संस्करण)

★

सम्पादक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट्दर्शन, २४ गीता

योग वासिष्ठ, २० स्मृतियाँ और १८ पुराणों

के प्रसिद्ध भाष्यकार

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, [वेद नगर] बरेली